* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

मन्मथ-मन्मथ भगवान् श्रीकृष्ण

राधा-माधवकी सेवामें अष्टसखियाँ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अगस्त २०१७ ई०

संख्या ८

पूर्ण संख्या १०८९

जयति निकुंजबिहारिनी

रसिक स्याम की जो सदा रसमय जीवनमूरि।
ता पद-पंकज की सतत बंदौ पावन धूरि॥
जयति निकुंजबिहारिनी, हरनि स्याम-संताप।
जिन की तन-छाया तुरत हरत मदन-मन-दाप॥

× × × ×

अष्ट सखी करतीं सदा सेवा परम अनन्य।
राधा-माधव-जुगलको, कर निज जीवन धन्य॥
इनके चरण-सरोज में बारंबार प्रनाम।
करुना कर दें श्रीजुगल-पद-रज-रति अभिराम॥

[पद-रत्नाकर]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अगस्त २०१७ ई०

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (₹3000); **पंचवर्षीय** US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु- gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—प्रेम सारी दैवी सम्पत्तियोंका मूल स्रोत है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग, सद्भावना, सहिष्णुता, क्षमा, उदारता, वदान्यता, मैत्री, अहिंसा, सेवा, सरलता, उन्मुक्तहृदयता, निष्कामता, प्रसन्नता, सत्य, विश्वास, साहस और सौजन्य आदि सद्‌गुण अपने-आप आ जाते हैं। इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ है, वहीं भय है। और जहाँ भय है, वहाँ परिग्रह, दुर्भाव, असहिष्णुता, कामना, क्रोध, कृपणता, अनुदारता, द्वेष, वैर, कपट, दम्भ, विषाद, अविश्वास, घृणा, लोभ, प्रतारणा, कायरता और कुटिलता आदि नीच वृत्तियाँ अपने-आप उत्पन्न हो जाती हैं।

याद रखो—जहाँ दैवी सम्पत्ति है, वहाँ सहज सुख, उल्लास, आनन्द, आत्मीयता रहते हैं; और जहाँ आसुरी सम्पत्ति है, वहाँ शोक, विषाद, दु:ख, परायापन रहते हैं।

याद रखो—प्रेम जितना शुद्ध होगा, उतना ही भगवदभिमुखी होगा और जहाँ भगवत्प्रेम होगा, वहाँ मनुष्यमें निर्भयता और निश्चिन्तता इतनी अधिक बढ़ जायगी कि वह कर्तव्यपालनमें, सत्यभाषणमें, दूसरोंका उपकार करनेमें, अपना स्र्वस्व देकर भी सेवा करनेमें और जीवनकी महान् कठिनाइयोंमें जरा भी नहीं डरेगा। वह दृढ़प्रतिज्ञ, मनस्वी, तेजस्वी, साहसी और वीर होनेके साथ ही अत्यन्त विनम्र, आदर्श, विनयी, मधुरभाषी, समझकर करनेवाला और शान्तिप्रिय होगा। उससे किसीका अपकार तो होगा ही नहीं। वह सर्वथा नि:स्वार्थ, भगवद्विश्वासी, भगवत्कृपापर निर्भर करनेवाला और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाला होगा।

याद रखो—भगवत्प्रेमी या तो सारे संसारमें भगवान्‌को देखता है या सारे संसारको भगवान्‌में देखता है। इसलिये वह स्वाभाविक ही निर्भय, नमनशील, विश्वप्रेमी, विश्वसेवक और विशालहृदय होगा। उसका न तो कोई वैरी रहेगा और न उसकी किसी वस्तुविशेषमें आसक्ति होगी। वह नित्य भगवत्-कर्म-रत, भक्तिरसाप्लुतहृदय और भगवत्परायण होगा।

× × ×

याद रखो—किसी भी भयमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवत्कृपाकी अपार शक्तिके सामने ठहर सके।

याद रखो—किसी भी पापमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवद्भक्तिके सामने टिक सके।

याद रखो—किसी भी तापमें इतनी शक्ति नहीं है, जो भगवत्प्रेमकी शीतलताके सामने रह सके।

याद रखो—तुमपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है, इसलिये भगवान्‌की भक्ति तुम्हारे हृदयमें लहरा रही है और भगवत्प्रेममें तुम डूबना ही चाहते हो। फिर भय, पाप, ताप कहाँ रहेंगे। उनको तो नष्ट हुए ही समझो। जबतक तुम्हें पाप-ताप तथा भय सताते हैं, तबतक तुमने सचमुच भगवत्कृपापर विश्वास ही नहीं किया। भगवान्‌ने स्वयं घोषणा की है—जो मुझमें विश्वास करता है, वह मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाता है।

याद रखो—तुम भगवान्‌के हो, भगवान् तुम्हारे हैं। उनसे अधिक निकटस्थ आत्मीय तुम्हारा और कोई नहीं है। वे तुम्हारी जितनी और जहाँतक सँभाल करते हैं, उतनी और वहाँतककी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

याद रखो—भगवान् तुम्हारे दोषोंको तुरन्त क्षमा कर देंगे और तुम्हें सदाके लिये अपना लेंगे। तुम एक बार उनकी सुहृदता और आत्मीयतापर पूर्ण विश्वास करके उन्हें मुक्तहृदयसे पुकार तो लो। **‘शिव’**

आवरणचित्र-परिचय—

साक्षात् मन्मथमन्मथ श्रीकृष्णका वेणुवादन

ब्रह्मा-इन्द्रादि देव-शिरोमणियोंपर विजय प्राप्त कर लेनेसे कामदेवको बड़ा गर्व हुआ और उसे इच्छा हुई कि अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्णचन्द्रपर विजय प्राप्त करूँ—ऐसा सोचकर भगवान्‌के पास जा करके उसने अपना मनोभाव प्रकट किया।

भगवान्‌ने कहा कि तुम मुझसे कैसे लड़ना चाहते हो, दुर्गके आश्रयणसे या मैदानमें? कामने कहा—'भगवन्! इन दोनों युद्धोंका स्वरूप क्या है?' भगवान् बोले कि दुर्गका युद्ध यह है कि मैं विरक्त होकर, एकान्त निर्जन वनमें समाधिस्थ हो जाऊँ और फिर तुम यदि अपनी माया और कलाओंसे मुझे मोहित और क्षुब्ध कर सको, तब तुम्हारी विजय है, अन्यथा मेरी।

मैदानका युद्ध दूसरे प्रकारका है। वह तब सम्भव है, जब श्रीमद्वृन्दावनधाममें यमुनाका स्वच्छ सुकोमल पुलिन हो, अमृतमय पूर्ण चन्द्रमाकी दिव्य ज्योत्स्ना फैली हो, शीतल-मन्द-सुगन्ध पवनका संचार हो, विविध विहंगोंके कलरव एवं भ्रमरमण्डलियोंके गुंजारसे निनादित पुष्पित वनराजिकी लोकोत्तर सुहावनी छटा व्यक्त हो रही हो, हंस-सारसशोभित सरोवरकी अद्भुत सौन्दर्य-माधुर्य-सौगन्ध्य-सौरस्य-सम्पन्न मलयानिल हो, रतिके गर्वको दूर करनेवाली अपरिगणित व्रज-बालाओंके मध्यमें रास करते हुए भी यदि मेरे मनमें विकार न हो तो मैं विजयी रहूँगा; और यदि मलयानिल तथा कान्ताओंके हाव-भाव एवं विलासोंसे मेरे मनमें क्षोभ हो जाय तो जीत तुम्हारी है।

कामदेव मन-ही-मन विचार करने लगा कि यदि इन्होंने दुर्गका आश्रयण किया तो फिर मेरी विजय नहीं होगी; क्योंकि जिस समय ये नरनारायण-रूपसे योगासनासीन होकर बदरिकाश्रममें तप कर रहे थे, उस समय अप्सराओंके अशेष हावभाव तथा वसन्तकी सहायता होनेपर भी मेरे सब बाण निष्फल हुए, फिर भी इनमें काम या क्रोधका संचार नहीं हुआ था, सो किलेबन्दीके युद्धमें इन्हें कौन पायेगा? अतः कामने कहा—'भगवन्! आप मैदानमें ही मुझसे युद्ध कीजिये।' भगवान्‌ने कहा—'तथास्तु, मैं मैदानमें ही तुमसे युद्ध करूँगा।'

शरत्पूर्णिमाकी स्निग्ध ज्योत्स्नामयी रात्रिका आगमन हुआ। यमुना-पुलिनपर त्रिभंगी मुद्रामें खड़े नटवरनागर भगवान् श्रीकृष्णने मुरलीको अपने अमृतमय मुखचन्द्रपर धारण करके उसे अधर-सुधासे पूरित किया और वेणुछिद्रोंद्वारा निःसृत गीतपीयूषको श्रोत्रपुटोंद्वारा व्रजांगनाओंके हृदयमें पहुँचाकर मानो कन्दर्पको रण-निमन्त्रण दिया। उस समय कामके मित्र वसन्तने भी उसका साथ दिया। पुष्पधन्वा कामके लिये उसने विविध प्रकारके पुष्परूपी बाणोंका सृजन किया, परंतु कन्दर्प और वसन्तका सारा प्रयास व्यर्थ रहा। परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण निर्विकार ही रहे। भला, ब्रह्मसाक्षात्कार या ब्रह्मस्पर्शसे कामादि विकार कहाँ रह सकते हैं, उनका तो आत्यन्तिक क्षय होना ही था। इसीलिये भगवान् कृष्ण मन्मथ (कामदेव)-के भी मनको मथनेवाले (मन्मथमन्मथ) कहे गये हैं। [**भक्तिसुधा**]

निष्कामभावकी महत्ता

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

जिस प्रकार श्रीभगवान्‌का नित्य-निरन्तर चिन्तन संसार-सागरसे शीघ्र उद्धार करेवाला सुगम उपाय बतलाया गया है (गीता १२।७; ८।१४), इसी प्रकार निष्काम क्रिया भी शीघ्र उद्धार करनेवाली तथा सुगम उपाय है (गीता ५।६)।और निष्काम-भावके साथ यदि भगवान्‌का स्मरण होता रहे तब तो फिर बात ही क्या है! वह तो सोनेमें सुगन्धकी तरह अत्यन्त महत्त्वकी चीज हो जाती है। इससे और भी शीघ्र कल्याण हो सकता है। किंतु भगवान्‌की स्मृतिके बिना भी यदि कोई मनुष्य फलासक्तिको त्यागकर निःस्वार्थभावसे चेष्टा करे तो उससे भी उसका कल्याण हो सकता है, बल्कि इसे ध्यानसे भी श्रेष्ठ बतलाया गया है। श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है—

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

(१२।१२)

'(मर्मको न जानकर किये हुए) अभ्याससे ज्ञान श्रेष्ठ है, ज्ञानसे मुझ परमेश्वरके स्वरूपका ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यानसे भी सब कर्मोंके फलका त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि त्यागसे तत्काल ही परम शान्ति होती है।'

अतः यह कोशिश करनी चाहिये कि भगवान्‌को याद रखते हुए ही सारी चेष्टा निष्कामभावपूर्वक हो। यदि काम करते समय भगवान्‌की स्मृति न हो सके तो केवल निष्कामभावसे ही मनुष्यका कल्याण हो सकता है। इसलिये निष्कामभावको हृदयमें दृढ़तासे धारण करना चाहिये; क्योंकि निष्कामभावसे की हुई थोड़ी-सी भी चेष्टा संसार-सागरसे उद्धार कर देती है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(२।४०)

'इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है। बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युपर महान् भयसे रक्षा कर लेता है।'

फिर जो नित्य-निरन्तर निष्कामभावसे क्रिया करनेके ही परायण हो जाय, उसके लिये तो कहना ही क्या है!

इसलिये मनुष्यको तृष्णा, इच्छा, स्पृहा, वासना, आसक्ति, ममता और अहंता आदिका सर्वथा त्याग करके जिससे लोगोंका परम हित हो, उसी काममें अपना तन, मन, धन लगा देना चाहिये।

स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य, मान, बड़ाई आदि अपने पास रहते हुए भी उनकी वृद्धिकी इच्छा करनेको 'तृष्णा' कहते हैं। जैसे किसीके पास एक लाख रुपये हैं तो वह पाँच लाख होनेकी इच्छा करता है और पाँच लाख हो जानेपर उसे दस लाखकी इच्छा होती है। इस प्रकार उत्तरोत्तर इच्छाकी वृद्धिका नाम तृष्णा है। इसी तरह मान, बड़ाई, पुत्र आदि अन्य चीजोंके सम्बन्धमें समझना चाहिये। यह तृष्णा बहुत ही खराब है, मनुष्यका पतन करनेवाली है।

स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्यकी कमीकी पूर्तिके लिये जो कामना होती है, उसका नाम 'इच्छा' है, जैसे किसीके पास अन्य सब चीजें तो हैं, पर पुत्र नहीं है तो उसके लिये जो मनमें कामना होती है, उसे 'इच्छा' कहते हैं।

पदार्थोंकी कमीकी पूर्तिकी इच्छा तो नहीं होती, पर जो बहुत आवश्यकतावाली वस्तुके लिये कामना होती है, जिसके बिना निर्वाह होना कठिन है, उसका नाम 'स्पृहा' है। जैसे कोई मनुष्य भूखसे पीड़ित है अथवा शीतसे कष्ट पा रहा है तो उसे जो अन्नकी अथवा वस्त्रकी इच्छा होती है, उसको 'स्पृहा' कहते हैं।

जिसके मनमें ये तृष्णा, इच्छा, स्पृहा तो नहीं है पर यह बात मनमें रहती है कि और तो किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है, पर जो वस्तुएँ प्राप्त हैं, वे बनी रहें और मेरा शरीर बना रहे, ऐसी इच्छाका नाम 'वासना' है।

उपर्युक्त कामनाओंमें पूर्व-पूर्वसे उत्तर-उत्तरवाली कामना सूक्ष्म और हलकी है तथा सूक्ष्म और हलकीका नाश होनेपर स्थूल और भारीका नाश उसके अन्तर्गत ही है। जिनमें उपर्युक्त तृष्णा, इच्छा, स्पृहा, वासना आदि किसी प्रकारकी भी कामना नहीं, वही निष्कामी है।

इन सम्पूर्ण कामनाओंकी जड़ आसक्ति है। शरीर, विषयभोग, स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य, मान, कीर्ति आदिमें जो प्रीति—लगाव है, उसका नाम 'आसक्ति' है। शरीर और संसारके पदार्थोंमें 'यह मेरा है' ऐसा भाव होना ही

'ममता' है। इस आसक्ति और ममताका जिसमें अभाव है, वही परम विरक्त वैराग्यवान् पुरुष है। ममता और आसक्तिका मूल कारण है—अहंता। स्थूल, सूक्ष्म या कारण—किसी भी देहमें, जो कि अनात्मवस्तु है, उसमें इस प्रकार आत्माभिमान करना कि देह मैं हूँ—यह 'अहंता' है। इसके नाशसे सारे दोषोंका नाश हो जाता है अर्थात् समस्त दोषोंकी मूलभूत अहंताका नाश होनेपर आसक्ति, ममता आदि सभीका विनाश हो जाता है। अहंकारमूलक ये जितने भी दोष हैं, उन सबका मूल कारण है—अज्ञान (अविद्या)। वह अज्ञान हमलोगोंकी प्रत्येक क्रिया और सम्पूर्ण पदार्थोंमें पद-पदपर इतना व्यापक हो गया है कि हम उससे भूले हुए संसार-चक्रमें ही भटक रहे हैं। उस अज्ञानका नाश परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे होता है। परमात्माका वह यथार्थ ज्ञान होता है अन्त:करणके शुद्ध होनेसे। हमलोगोंके अन्त:करण राग-द्वेष आदि दुर्गुण और झूठ, कपट, चोरी आदि दुराचाररूप मलसे मलिन हो रहे हैं। इस मलको दूर करनेका उपाय है—ईश्वरकी उपासना या निष्काम कर्म।

हमलोगोंमें स्वार्थकी अधिकता होनेके कारण प्रत्येक कार्य करते समय पद-पदपर स्वार्थका भाव जाग्रत् हो जाता है। पर कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको ईश्वर, देवता, ऋषि, महात्मा, मनुष्य और किसी भी जंगम या स्थावर प्राणीसे अथवा जड पदार्थोंसे अपने व्यक्तिगत स्वार्थकी इच्छा कभी नहीं रखनी चाहिये। जब-जब चित्तमें स्वार्थकी भावना आये तभी उसको तुरन्त हटाकर उसके बदले हृदयमें इस भावकी जागृति पैदा करनी चाहिये कि सबका हित किस प्रकार हो। जैसे कोई अर्थका दास लोभी मनुष्य दूकान खोलनेसे लेकर दूकान बन्द करनेके समयतक प्रत्येक काम करते हुए यही इच्छा और चेष्टा करता रहता है कि रुपया कैसे मिले, धन-संग्रह कैसे हो, इसी प्रकार कल्याणकामी पुरुषको प्रत्येक क्रियामें यह भावना रखनी चाहिये कि संसारका हित कैसे हो। जो मनुष्य अपने कल्याणकी भी इच्छा न रखकर अपना कर्तव्य समझकर लोकहितके लिये अपना तन, मन, धन लगा देता है, वही असली स्वार्थ-त्यागी निष्कामी श्रेष्ठ पुरुष है।

किंतु दु:खकी बात है कि स्वार्थके कारण हमलोग अज्ञानसे इतने अन्धे हो रहे हैं कि निष्कामभावसे दूसरोंका हित करना तो दूर रहा, बल्कि दूसरोंसे अपना ही स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं और करते हैं। जितनी स्वार्थपरता इस समय देखनेमें आ रही है, उतनी तो इससे कुछ काल पूर्व भी नहीं थी। फिर द्वापर, त्रेता और सत्ययुगकी तो बात ही क्या! इस समय तो स्वार्थ-सिद्धिके लिये मनुष्य झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी, विश्वासघात आदि करनेसे भी बाज नहीं आते तथा अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये ईश्वर और धर्मको भी छोड़ बैठते हैं। भला, ऐसी परिस्थितिमें मनुष्यका कल्याण कैसे हो सकता है!

जो दूसरेका हक (स्वत्व) है, उसमें स्वाभाविक ही ग्लानि होनी चाहिये। पर हमारी तो ग्लानि न होकर हर प्रकारसे उसे हड़पनेकी ही चेष्टा रहती है। यह बहुत बुरी आदत है। दूसरेके हकको सदा त्याज्य बुद्धिसे देखना चाहिये। उसे ग्रहण करना तो दूर रहा, पर-स्त्रीके स्पर्शकी तरह उसके स्पर्शको भी पाप समझना चाहिये। जो मनुष्य पर-स्त्री और पर-धनका अपहरण करते हैं या उनकी इच्छा करते हैं तथा पर-अपवाद करते हैं, उनका कल्याण कहाँ, उनके लिये तो नरकमें भी ठौर नहीं है।

आजकल व्यापारमें भी इतनी धोखेबाजी बढ़ गयी है कि हम दूसरेका धन हड़पनेके लिये हर वक्त तैयार रहते हैं। इसको हम चोरी कहें या डकैती। कोई आदमी जब अपना माल बेचता है तो वजन आदिमें कम देना चाहता है। पाट, सुपारी, रूई, ऊन आदि बिक्रीकी चीजोंको जलसे भिगोकर उसे भारी बना देते हैं तथा बेचते समय हरेक वस्तुको वजन, नाप और संख्यामें हर प्रकारसे कम देनेकी ही चेष्टा करते हैं, पर माल खरीदते समय स्वयं वजन, नाप और संख्यामें अधिक-से-अधिक लेनेकी चेष्टा करते हैं। एवं बेचते समय नमूना दूसरा ही दिखलाते हैं और चीज दूसरी ही देते हैं। एक चीजमें दूसरी चीज मिला देते हैं—जैसे घीमें वेजिटेबुल, नारियलके तैलमें किरासिन, दालमें मिट्टी इत्यादि। इस प्रकार हर तरीकेसे धोखा देकर स्वार्थ-सिद्धि करते हुए अपना परलोक बिगाड़ते हैं। कोई-कोई तो व्यापारी, सरकार, रेलवे या मिलिटरीके किसी भी मालको उठानेका अवसर पाते हैं तो धोखा देनेकी ही चेष्टा करते हैं। उनसे माल खरीदते तो हैं थोड़ा और उनके कर्मचारियोंसे

मिलकर जितना माल खरीद करते हैं, उससे बहुत अधिक माल उठा लेते हैं। यह सरासर चोरी है। यह बहुत अन्यायका काम है। इस अनर्थसे सर्वथा बचना चाहिये।

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको अपनी समस्त क्रिया निष्कामभावसे ही करनी चाहिये। ईश्वर-देवता, ऋषि-मुनि, साधु-महात्माओंका पूजा-सत्कार तथा यज्ञ-दान, जप-तप, तीर्थ-व्रत, अनुष्ठान एवं पूजनीय पुरुष और दुखी, अनाथ, आतुर प्राणियोंकी सेवा आदि कोई भी धार्मिक कार्य हो, उसे कर्तव्य समझकर ममता, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर निष्कामभावसे करना चाहिये, किसी प्रकारकी कामनाकी सिद्धिके लिये या संकट-निवारणके लिये नहीं। यदि कहीं लोक-मर्यादामें बाधा आती हो तो राग-द्वेषसे रहित होकर लोक-संग्रहके लिये काम्य-कर्म कर लें तो वह सकाम नहीं है।

उपर्युक्त धार्मिक कार्योंको करनेके पूर्व ऐसी इच्छा करना कि अमुक कामनाकी सिद्धि होनेपर अमुक अनुष्ठानादि कार्य करेंगे तो इसकी अपेक्षा वह अच्छा है जो उन धार्मिक कार्योंके करनेके समय ही इच्छित कामनाका उद्देश्य रखकर करता है और उससे वह श्रेष्ठ है, जो धार्मिक कार्योंको सम्पादन करनेके बाद उक्त ईश्वर, देवता, महात्मा आदिसे प्रार्थना करता है कि मेरा यह कार्य सिद्ध करें तथा उसकी अपेक्षा वह श्रेष्ठ है कि जो किसी कामनाकी सिद्धिका उद्देश्य लेकर तो नहीं करता पर कोई आपत्ति आनेपर उसके निवारणके लिये उससे कामना कर लेता है। इसकी अपेक्षा भी वह श्रेष्ठ है जो आत्माके कल्याणके लिये धार्मिक अनुष्ठानादि करता है और वह तो सबसे श्रेष्ठ है जो केवल निष्कामभावसे कर्तव्य समझकर करता है तथा बिना माँगे भी वे कोई पदार्थ दें तो लेता नहीं। हाँ, यदि केवल उनकी प्रसन्नताके लिये राग-द्वेषसे शून्य होकर लेना पड़े तो उसमें कोई दोष नहीं है।

इसी प्रकार जड पदार्थोंसे भी कभी कोई स्वार्थ-सिद्धिकी कामना नहीं करनी चाहिये। जैसे बीमारीकी निवृत्तिके लिये शास्त्रविहित औषध, क्षुधाकी निवृत्तिके लिये अन्न, प्यासकी निवृत्तिके लिये जल और शीतकी निवृत्तिके लिये वस्त्र आदिका सेवन करनेमें अनुकूलता-प्रतिकूलता होनी स्वाभाविक है, पर उनमें भी राग-द्वेष और हर्ष-शोकसे शून्य होकर निष्कामभावसे ही उनका सेवन करना चाहिये। यदि कहीं अनुकूलतामें प्रीति और हर्ष तथा प्रतिकूलतामें द्वेष और शोक उत्पन्न हों तो समझना चाहिये कि उसके अन्दर छिपी हुई कामना है।

किसी प्रकार भी किसीकी कभी सेवा स्वीकार नहीं करनी चाहिये, अपितु अपनेसे बने जहाँतक तन, मन, धन आदि पदार्थोंसे दूसरोंकी सेवा करना उचित है, किंतु किसीसे सेवा करानी तो कभी नहीं चाहिये। यदि रोगग्रस्तावस्था आदि आपत्तिकालके समय स्त्री, पुत्र, नौकर, मित्र, बन्धु-बान्धव आदिसे सेवा न करानेपर उनको दुःख हो तो ऐसी हालतमें उनके सन्तोषके लिये कम-से-कम सेवा करा लेना भी कोई सकाम नहीं है।

लोग दहेज लेनेके समय अधिक-से-अधिक लेनेकी चेष्टा करते हैं और यदि देनेवाले इच्छानुसार दहेज नहीं देते तो उनका सम्बन्ध त्याग कर देते हैं। एक प्रकारसे देखा जाय तो दहेज एक प्रतिग्रह ही है। उसे प्रतिग्रह समझकर अधिक-से-अधिक उसका त्याग करना चाहिये। दहेज आदि देनेकी इच्छा तो रखनी चाहिये, पर लेनेकी नहीं। जहाँ किसीसे न लेनेमें वह नाराज हो तो उसके सन्तोषके लिये कम-से-कम स्वीकार करनेमें कोई सकामता नहीं है।

इसी प्रकार किसी भी संस्था या व्यक्तिसे कभी किसी भी प्रकार कुछ भी नहीं लेना चाहिये। यदि लेना ही पड़े तो लेनेसे पूर्व, लेते समय या लेनेके बाद उसके बदलेमें जितनी चीज उससे ली हो, उससे अधिक मूल्यकी चीज किसी भी प्रकार देनेकी चेष्टा रखनी चाहिये।

पूर्वके जमानेमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासीकी तो बात ही क्या, गृहस्थीको भी किसी चीजके लिये किसीसे याचना नहीं करनी पड़ती थी, बिना माँगे ही खर्च, विवाह आदिके अवसरोंपर मित्र, बन्धु-बान्धव, सगे-सम्बन्धी लोग आवश्यकतानुसार चीजें पहुँचा दिया करते थे और इसमें वे अपना अहोभाग्य समझते थे। यदि उनके पास कोई चीज नहीं होती तो वे दूसरे जान-पहचानवालोंसे लेकर भेज देते थे। इससे किसीको भी याचना नहीं करनी पड़ती थी। इसमें स्वार्थका त्याग ही प्रधान कारण है।

इसलिये हमलोग भी सबके साथ निःस्वार्थभावसे उदारतापूर्वक त्यागका व्यवहार करें तो हमारे लिये आज भी सत्ययुग मौजूद है अर्थात् पूर्वकालकी भाँति हमारा भी काम बिना याचनाके चल सकता है। अतः हमको किसी

चीजकी याचना नहीं करनी चाहिये। और बिना याचना किये ही कोई दे जाय—ऐसी इच्छा या आशा भी नहीं रखनी चाहिये। तथा ऐसी इच्छा न रहते हुए भी यदि कोई दे जाय तो उसको रख लेनेकी इच्छा भी कामना ही है। इस प्रकारकी कामना न रहते हुए भी कोई आग्रहपूर्वक दे जाय तो उसे स्वीकार करते समय जो चित्तमें स्वार्थको लेकर प्रसन्नता होती है, वह भी छिपी हुई कामना ही है। इसलिये भारी-से-भारी आपत्ति पड़नेपर भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरेकी सेवा और स्वत्वको स्वीकार नहीं करना चाहिये, अपने निश्चयपर डटे रहना चाहिये। धैर्यका कभी त्याग नहीं करना चाहिये, चाहे प्राण भी क्यों न चले जायँ, फिर इज्जत और शारीरिक कष्टकी तो बात ही क्या! किंतु हमलोगोंमें इतनी कमजोरी आ गयी कि थोड़ा-सा भी कष्ट प्राप्त होनेपर अपने निश्चयसे विचलित हो जाते हैं। कामनाकी तो बात ही क्या, साधारण-से कार्यके लिये ही याचनातक कर बैठते हैं। ऐसी हालतमें निष्काम कर्मकी सिद्धि कैसे सम्भव है!

याद रखना चाहिये कि ब्रह्मचारी और संन्यासी भिक्षाके लिये भोजनकी याचना करें तो वह याचना उनके लिये सकाम नहीं है। ब्रह्मचारी तो गुरुके लिये ही भिक्षा माँगता है और गुरु उस लायी हुई भिक्षामेंसे जो कुछ उसे दे देता है, उसे ही वह प्रसाद समझकर पा लेता है तथा संन्यासी अपने और गुरुके लिये अथवा गुरु न हों तो केवल अपने लिये भी भिक्षा माँग सकता है; क्योंकि भिक्षा माँगना उनका धर्म बतलाया गया है। और यदि कोई बिना माँगे भिक्षा दे देता है तो उसे स्वीकार करना उनके लिये अमृतके तुल्य है। इस प्रकार माँगकर लायी हुई और बिना माँगे स्वतः प्राप्त हुई भिक्षा भी राग-द्वेषसे रहित होकर ही लेनी चाहिये।

जहाँ विशेष आदर-सत्कार, पूजाभावसे भिक्षा मिलती हो, वहाँ भिक्षा नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि वहाँ भिक्षा लेनेसे अभिमानके बढ़नेकी गुंजाइश है तथा जहाँ अनादरसे भिक्षा दी जाती हो वहाँ भी नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि वहाँ दाता क्लेशपूर्वक देता है, अतः वह ग्राह्य नहीं है। इसलिये मान-अपमान और निन्दा-स्तुतिसे तथा भोजनमें यह बुरा है, यह भला है—इस प्रकार अनुकूलमें राग और प्रतिकूलमें द्वेषसे शून्य होकर प्राप्त की हुई भिक्षा अमृतके समान है। इसमें भी जो पदार्थ शास्त्र और मनके विपरीत हों, उनका हम त्याग कर सकते हैं, जैसे कोई मदिरा, मांस, अंडे, लहसुन, प्याज आदि भिक्षामें दे तो उन्हें शास्त्रनिषिद्ध समझकर उनका त्याग करना ही उचित है। एवं कोई घी, दूध, मेवा, मिष्टान्न देता है तो शास्त्र और स्वास्थ्यके अनुकूल होते हुए भी वैराग्यके कारण मनके विपरीत लगनेवाली इन चीजोंका त्याग करना भी कोई दोष नहीं है। ब्रह्मचारी और संन्यासीको विशेष आवश्यकता पड़नेपर कौपीन, कमण्डलु और शीत-निवारणार्थ वस्त्रकी याचना करनेमें भी कोई दोष नहीं है।

वानप्रस्थीके लिये तप, अनुष्ठान आदि; ब्राह्मणके लिये यज्ञ कराना, विद्या पढ़ाना आदि; क्षत्रियके लिये प्रजाकी रक्षा और न्यायसे प्राप्त युद्ध* आदि; वैश्यके लिये कृषि, वाणिज्य आदि तथा स्त्रियों और शूद्रोंके लिये सेवा-शुश्रूषा आदि सभी शास्त्रविहित जो कर्म हैं, उनके सम्पन्न होने या न होनेमें तथा उनके फलमें राग-द्वेष और हर्ष-शोकसे रहित होकर उनका निष्काम-भावसे आचरण करना चाहिये। यदि कहीं उनकी सिद्धिसे प्रीति या हर्ष और असिद्धिसे द्वेष या शोक होते हैं तो समझना चाहिये कि उसके अन्दर छिपी हुई कामना विद्यमान है।

इसलिये मनुष्यको सम्पूर्ण कामना, आसक्ति, ममता और अहंकारको त्यागकर केवल लोकोपकारके उद्देश्यसे निष्कामभावर्पूक शास्त्रविहित समस्त कर्मोंका कर्तव्य-बुद्धिसे आचरण करना चहिये। इस प्रकार करनेसे उसमें दुर्गुण-दुराचारोंका अत्यन्त अभाव होकर स्वाभाविक ही विवेक-वैराग्य, श्रद्धा-विश्वास, शम-दम आदि सद्गुणोंकी वृद्धि हो जाती है तथा उसका अन्तःकरण शुद्ध होकर उसमें इतनी निर्भयता आ जाती है कि भारी-से-भारी संकट पड़नेपर भी वह किसी प्रकार कभी विचलित नहीं होता, अपितु धीरता, वीरता, गम्भीरताका असीम सागर बन जाता है एवं परम शान्ति और परम आनन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

---

* श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं—सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ (२। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान समझकर, उसके बाद युद्धके लिये तैयार हो जा; इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको नहीं प्राप्त होगा।'

संगका फल

[एक सच्चा वैदिक आख्यान]

(पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय, एम०ए०, साहित्याचार्य)

(१)

वासनाका राज्य अखण्ड है। वासनाका विराम नहीं। फलकी प्राप्ति होनेपर यदि एक वासनाको हम नि:शेष करनेमें समर्थ भी होते हैं, तो न जाने कहाँसे दूसरी ओर उससे भी प्रबल वासनाएँ पनप जाती हैं। कुछ कालतक प्रबल कारणोंसे कतिपय वासनाएँ सुप्त अवश्य हो जाती हैं, परंतु किसी उत्तेजक कारणके आते ही वे जग पड़ती हैं। भला, कोई स्वप्नमें भी सोच सकता था कि महर्षि सोभरि काण्वका दृढ़ वैराग्य मीनराजके सुखद गार्हस्थ्य-जीवनके दर्शनरूप वायुके एक हलके-से झकोरेसे ही जड़से उखड़कर भूतलशायी बन जायगा।

महर्षि सोभरि कण्व-वंशके अवतंस थे; उन्होंने वेद-वेदांगका गुरुमुखसे अध्ययनकर धर्मका रहस्य भलीभाँति जान लिया था। उनका शास्त्रानुचिन्तन गहरा था, परंतु उससे भी गहरा था उनका जगत्के प्रपंचोंसे वैराग्य। जगत्के समग्र विषय-सुख क्षणिक हैं। चित्तको उनसे वास्तविक शान्ति नहीं मिल सकती। तब कोई विवेकी पुरुष अपने अनमोल जीवनको इन कौड़ीके तीन विषयोंकी ओर क्यों लगायेगा। आजका विशाल सुख कल ही अतीतकी स्मृति बन जाता है, पलभरमें सुखकी सरिता सूखकर मरुभूमिकी विशाल बालुकाराशिके रूपमें परिणत हो जाती है; तब कौन विज्ञ पुरुष इस सरिताके सहारे अपनी जीवन-वाटिकाको हरी-भरी रखनेका उद्योग करेगा। सोभरिका चित्त इन भावनाओंकी रगड़से इतना चिकना बन गया था कि पिता-माताका विवाहविषयक प्रस्ताव चिकने घड़ेपर जलकी बूँदके समान उसपर टिक न सका। उन्होंने बहुत समझाया—'अभी भरी जवानी है, अभिलाषाएँ उभरी हुई हैं; तुम्हारे जीवनका यह नया वसन्त है, कामना-मंजरीके विकसित होनेका उपयुक्त समय है, रस-लोलुप चित्त-भ्रमरको इधर-उधरसे हटाकर सरस माधवीके रसपानमें लगाना है। अभी वैराग्यका बाना धारण करनेका अवसर नहीं, परंतु सोभरिने किसीके शब्दोंपर कान न दिया, उनका कान तो वैराग्यसे भरे अध्यात्म-सुखसे सराबोर मंजुल गीतोंको सुननेमें न जाने कबसे लगा हुआ था। पिता-माताका अपने पुत्रको गार्हस्थ्य-जीवनमें लानेका उद्योग सफल न हो सका। पुत्रके हृदयमें भी देरतक द्वन्द्व मचा रहा। एक बार चित्त कहता—'माता-पिताके वचनोंका अनादर करना पुत्रके लिये अत्यन्त अहितकर है' परंतु दूसरी बार एक विरोधी वृत्ति धक्का देकर सुझाती है—'**आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।**' आत्मकल्याण ही सबसे बड़ी चीज ठहरी, गुरुजनोंके वचनों और कल्याण-भावनामें विरोध होनेपर हमें आत्मकल्याणसे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। सोभरि इस अन्तर्युद्धको बहुत देरतक अपने हृदयके कोनेमें छिपा न सके और घरसे सदाके लिये नाता तोड़कर उन्होंने इस युद्धको भी विराम दिया। महर्षिके असामयिक वैराग्य और आकस्मिक गृहत्यागसे मनुष्योंके हृदय विस्मित हो उठे।

(२)

पवित्र नदीतट। कल्लोलिनी कालिन्दी कल-कल करती हुई बह रही थी। किनारेपर उगे हुए तमाल-वृक्षोंकी सघन छायामें रंग-बिरंगी चिड़ियोंका चहकना कानोंमें अमृत उँड़ेल रहा था। घने जंगलके भीतर पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे और नाना प्रकारके विघ्नोंसे अलग रहकर विशेष सुखका अनुभव करते थे। सायंकाल गोधूलिकी भव्य वेलामें गायें दूधसे भरे थनोंके भारसे किंचित् झुकी हुई जब मन्द गतिसे दूरके गाँवोंकी ओर जाती थीं, उस समय यह दृश्य अनुपम आनन्दकी सृष्टि करता था। यमुनाकी सतहपर शीतल पवनके हलके झकोरोंसे छोटी-छोटी लहरियाँ उठती थीं और भीतर मछलियोंके झुण्ड-के-झुण्ड इधर-से-उधर फुदकते हुए स्वच्छन्दताके सुखका अनुभव कर रहे थे। यहाँ था

शान्तिका अखण्ड राज्य। इसी एकान्त स्थानको सोभरिने अपनी तपस्याके लिये पसन्द किया।

सोभरिके हृदयमें तपस्याके प्रति महान् अनुराग तो था ही, स्थानकी पवित्रता तथा एकान्तताने उनके चित्तको हठात् अपनी ओर खींच लिया। यमुनाके जलके भीतर वे लगे तपस्या करने। भादोंमें भयंकर बाढ़के कारण यमुना-जल बड़े ही वेगसे बढ़ने और बहने लगता; परंतु ऋषिके चित्तमें न तो किसी प्रकारका बढ़ाव था और न किसी प्रकारका बहाव। पूस-माघकी रातोंमें पानी इतना अधिक ठण्डा होता कि जल-जन्तु भी ठण्डके कारण काँपते; परंतु मुनिके शरीरमें जल-शयन करनेपर भी किसी प्रकारकी जड़ता न आती। वर्षाके साथ-साथ ऐसी ठण्डी हवा चलती कि प्राणीमात्रके शरीर सिकुड़ जाते; परंतु ऋषिके शरीरमें तनिक भी सिकुड़न न आती। ऐसी विकट तपस्याका क्रम बहुत वर्षोंतक चलता रहा। सोभरिको वह दिन याद था, जब उन्होंने तपस्याके निमित्त अपने पिताका आश्रम छोड़कर यमुनाका आश्रय लिया। उस समय उनकी भरी जवानी थी, परंतु अब? लम्बी दाढ़ी और मुलायम मूँछोंपर हाथ फेरते समय उन्हें प्रतीत होने लगता कि उनकी उम्र ढलने लगी है। जो उन्हें देखता, आश्चर्यसे चकित हो जाता। इतनी विकट तपस्या! शरीरपर इतना अधिकार!! सर्दी-गर्मी सह लेनेकी इतनी अधिक शक्ति!!! दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहता। परंतु महर्षिके चित्तकी विचित्र दशा थी। वे नित्य यमुनाके श्यामल जलमें मत्स्यराजकी अपनी प्रियतमाके साथ रतिक्रीड़ा देखते-देखते आनन्दसे विभोर हो जाते। कभी पति अपनी मानवती प्रेयसीके मानभंजनके लिये हजारों उपाय करते-करते थक जानेपर आत्म-समर्पणके मोहन-मन्त्रके सहारे सफलमनोरथ होता और कभी वह मत्स्य-सुन्दरी इठलाती नाना प्रकारसे अपना प्रेम जताती अपने प्रियतमकी गोदीका आश्रय लेकर अपनेको कृतकृत्य मानती। झुण्ड-के-झुण्ड बच्चे मत्स्य-दम्पतीके चारों ओर अपनी ललित लीलाएँ किया करते और उनके हृदयमें प्रमोद-सरिता बहाया करते। ऋषिने देखा, गार्हस्थ्य-जीवनमें बड़ा रस है। पति-पत्नीके विविध रसमय प्रेम-कल्लोल! बाल-बच्चोंका स्वाभाविक सरल सुखद हास्य! परंतु उनके जीवनमें रस कहाँ? रस (जल)-का आश्रय लेनेपर भी चित्तमें रसका नितान्त अभाव था। उनकी जीवन-लताको प्रफुल्लित करनेके लिये कभी वसन्त नहीं आया। उनके हृदयकी कलीको खिलानेके लिये मलयानिल कभी नहीं बहा। भला, यह भी कोई जीवन है। दिन-रात शरीरको सुखानेका उद्योग, चित्तवृत्तियोंको दबानेका विफल प्रयास। उन्हें जान पड़ता मछलियोंके छोटे-छोटे बच्चे उनके नीरस जीवनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

संगतिने सुप्त सांसारिक वासनाको जोरोंसे झकझोरकर जगा दिया। वह अपनेको प्रकट करनेके लिये मार्ग खोजने लगी।

तपका उद्देश्य केवल शरीरको नाना प्रकारके साधनोंसे तप्त करना नहीं है, प्रत्युत मनको तप्त करना है। सच्चा तप मनमें जमे हुए कामके कूड़े-करकटको जलाकर राख बना देता है। आगमें तपाये हुए सोनेकी भाँति तपस्यामें तपाया गया चित्त खरा उतरता है। तप स्वयं अग्निरूप है। उसकी साधना करनेपर भला, कभी चित्तमें अज्ञानका अन्धकार अपना घर बना सकता है? उसकी ज्वाला दुर्वासनाओंको भस्म कर देती है और उसका प्रकाश समग्र पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है। शरीरको पीड़ा पहुँचाना तपस्याका स्वाँगमात्र है। नहीं तो, क्या इतने दिनोंकी घोर तपस्याके बाद भी सोभरिके चित्तमें प्रपंचसे विरति और भगवान्‌के चरणोंमें सच्ची रति न होती?

× × ×

(३)

वैराग्यसे वैराग्य ग्रहणकर तथा तपस्याको तिलांजलि देकर महर्षि सोभरि प्रपंचकी ओर मुड़े और अपनी गृहस्थी जमानेमें जुट गये। विवाहकी चिन्ताने उन्हें कुछ बेचैन कर डाला। गृहिणी घरकी दीपिका है; धर्मकी सहचारिणी है। पत्नीकी खोजमें उन्हें दूर-दूरकी सैर करनी पड़ी। रत्न खोज करनेपर ही प्राप्त होता है, घरके कोनेमें अथवा दरवाजेपर वह बिखरा हुआ थोड़े ही मिलता है। उस समय महाराज

त्रसदस्युके प्रबल प्रतापके सामने सप्तसिन्धुके समस्त नरेश नत-मस्तक थे। वे पुरुवंशके मणि थे; पुरुकुत्सके पुत्र थे। उनका 'त्रसदस्यु' नाम नितान्त सार्थक था। आर्योंकी सभ्यतासे सदा द्वेष रखनेवाले दस्युओंके हृदयमें इनके नाममात्रसे कम्प उत्पन्न हो जाता था। वे सप्तसिन्धुके पश्चिमी भागपर शासन करते थे। महर्षिको यमुना-तटसे सुवास्तु (सिन्धुनदकी सहायक स्वात नदी)-के तीरपर राजसभामें सहसा उपस्थित देखकर उन्हें उतना आश्चर्य नहीं हुआ, जितना उनके राजकुमारीसे विवाह-विषयक प्रस्तावपर। इस अवस्थामें इतनी कामुकता! इनके तो अब दूसरे लोकमें जानेके दिन समीप आ रहे हैं; परंतु आज भी इस लोकमें गृहस्थी जमानेका यह आग्रह!! परंतु सोभरिकी इच्छाका विघात करनेसे भी उन्हें भय मालूम होता था। उनके हृदयमें एक विचित्र द्वन्द्वयुद्ध मच गया। एक ओर तो वे अभ्यागत तपस्वीकी कामना पूर्ण करना चाहते थे, परंतु दूसरी ओर उनका पितृत्व चित्तपर आघात देकर कह रहा था—इस वृद्ध जरद्गवके गलेमें अपनी सुमन-सुकुमार सुताको मत बाँधो। राजाने इन विरोधी वृत्तियोंको बड़ी कुशलतासे अपने चित्तके कोनेमें दबाकर सोभरिके सामने स्वयंवरका प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा—'क्षत्रिय-कुलकी कन्याएँ गुणवान् पतिको स्वयं वरण किया करती हैं। अतः आप मेरे साथ अन्तःपुरमें चलिये। जो कन्या आपको अपना पति बनाना स्वीकार करेगी, उसे मैं आपके साथ विधिवत् विवाह दूँगा।' राजा वृद्धको अपने साथ लेकर अन्तःपुरमें चले, परंतु उनके कौतुककी सीमा न रही, जब वह वृद्ध अनुपम सर्वांगशोभन युवकके रूपमें महलमें दीख पड़ा। रास्तेमें ही सोभरिने तपस्याके बलसे यह रूप-परिवर्तन कर डाला था। जो देखता वही मुग्ध हो जाता। स्निग्ध श्यामल शरीर, ब्रह्मवर्चस्‌से चमकता हुआ चेहरा, उन्नत ललाट, अंगोंमें यौवनसुलभ स्फूर्ति, नेत्रोंमें विचित्र दीप्ति; जान पड़ता था मानो स्वयं अनंग अंग धारणकर रतिकी खोजमें सजे हुए महलोंके भीतर प्रवेश कर रहा हो। सुकुमारी राजकन्याओंकी दृष्टि इस युवक तापसपर पड़ी। चार आँखें होते ही उनका चित्त-भ्रमर मुनिके रूप-कुसुमकी माधुरी चखनेके लिये विकल हो उठा। पिताका प्रस्ताव सुनना था कि सबने मिलकर मुनिको घेर लिया और एक स्वरसे मुनिको वरण कर लिया। राजाने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

सुवास्तुके सुन्दर तटपर विवाह-मण्डप रचा गया। महाराज त्रसदस्युने अपनी पचास पुत्रियोंका विवाह महर्षि सोभरि काण्वके साथ पुलकितवदन होकर सम्पन्न कर दिया और दहेजमें विपुल सम्पत्ति दी—सत्तर-सत्तर गायोंके तीन झुण्ड, श्यामवर्ण वृषभ—जो इन सबोंके आगे-आगे चलता था, अनेक घोड़े, नाना प्रकारके रंग-बिरंगे कपड़े, अनमोल रत्न। गार्हस्थ्य-जीवनको रसमय बनानेवाली समस्त वस्तुओंको एक साथ एक ही जगह पाकर मुनिकी कामना-वल्ली लहलहा उठी। इन चीजोंसे सज-धजकर रथपर सवार हो मुनि जब यमुना-तटकी ओर आ रहे थे, उस समय रास्तेमें वज्रपाणि भगवान् इन्द्रका देवदुर्लभ दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ। ऋषि आनन्दसे गद्गद स्वरमें स्तुति करने लगे—

वयं हि त्वा बन्धुमन्तम-
बन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा
गहि विश्वेभिः सोमपीतये॥
नकी रेवन्तं सख्याय
विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।
यदा कृणोषि नदनुं
समूहस्यादित् पितेव हूयसे॥

(ऋग्वेद ८। २१। ४, १४)

'स्तोत्रं कस्य न तुष्टये।' इस स्तुतिको सुनकर देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषिसे आग्रह करने लगे कि 'वर माँगो।' सोभरिने अपने मस्तकको झुकाकर विनयभरे शब्दोंमें कहना आरम्भ किया—'प्रभो! मेरा यौवन सदा बना रहे; मुझमें इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेकी शक्ति हो, अक्षय रति हो और इन पचास पत्नियोंके साथ एक ही समय रमण करनेकी सामर्थ्य मुझमें हो जाय। विश्वकर्मा मेरे लिये सोनेके महल बना

दें, जिनके चारों ओर कल्पवृक्षसे युक्त पुष्प-वाटिकाएँ हों। मेरी पत्नियोंमें किसी प्रकारकी स्पर्धा, परस्पर कलह कभी न हो। आपकी दयासे मैं गार्हस्थ्य-जीवनका पूरा-पूरा सुख उठा सकूँ।'

इन्द्रने गम्भीर स्वरमें कहा—'तथास्तु!' देवताने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार कर ली—भक्तका हृदय आनन्दसे गद्गद हो उठा।

(४)

'वस्तुकी प्राप्तिकी आशामें जो आनन्द आता है, वह उसकी प्राप्तिमें नहीं। मनुष्य उसे पानेके लिये बेचैन बना रहता है, लाखों कोशिशें करता है; उसकी कल्पनासे ही उसके मुँहसे लार टपकने लगती है, परंतु वस्तुके करतलगत होते ही उसमें विरसता आ जाती है, उसका स्वाद फीका पड़ जाता है, उसकी चमक-दमक जाती रहती है और दिन-प्रतिदिनकी गले पड़ी वस्तुओंके ढोनेके समान उसका भी ढोना दूभर हो जाता है।' गार्हस्थ्यमें दूरसे आनन्द अवश्य आता है, परंतु गले पड़नेपर उसका आनन्द उड़ जाता है, केवल तलछट बाकी रह जाता है।

महर्षि सोभरिके लिये गार्हस्थ्य-जीवनकी लता हरी-भरी सिद्ध नहीं हुई। बड़ी-बड़ी कामनाओंको हृदयमें लेकर वे इस घाट उतरे थे, परंतु यहाँ विपदाके जल-जन्तुओंके कोलाहलसे सुखपूर्वक खड़ा होना भी असम्भव हो गया। विचारशील तो वे थे ही। विषय-सुखोंको भोगते-भोगते निर्वेद—और अब सच्चा निर्वेद उत्पन्न हो गया। सोचने लगे—'क्या यही सुखद जीवन है, जिसके लिये मैंने वर्षोंकी साधनाका तिरस्कार किया है? मुझे धन-धान्यकी कमी नहीं है; गो-सम्पत्ति मेरी अतुलनीय है; भूखकी ज्वाला अनुभव करनेका अशुभ अवसर मुझे कभी नहीं आया; परंतु मेरे चित्तमें चैन नहीं!! कलकण्ठ कामिनियोंके कोकिल-विनिन्दित स्वरने मेरी जीवन-वाटिकामें वसन्तको लानेका उद्योग किया; वसन्त आया, पर उसकी सरसता टिक न सकी। बालक-बालिकाओंकी सुमधुर काकलीने मेरे जीवनोद्यानमें पावसको ले आनेका प्रयत्न किया, परंतु मेरा जीवन सदाके लिये हरा-भरा न हो सका। हृदय-वल्ली कुछ कालके लिये जरूर लहलहा उठी, परंतु पतझड़के दिन शीघ्र आ धमके; पत्ते मुरझाकर झड़ गये। क्या यही सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन है? बाहरी प्रपंचमें फँसकर मैंने आत्मकल्याणको भुला दिया। मानवजीवनकी सफलता इसीमें है कि योगके द्वारा आत्म-दर्शन किया जाय—'**यद्योगेनात्मदर्शनम्**' परंतु भोगके पीछे मैंने योगको भुला दिया; अनात्माके चक्करमें पड़कर मैंने आत्माको बिसार दिया और प्रेयमार्गका अवलम्बनकर मैंने 'श्रेयः'—आत्यन्तिक सुखकी उपेक्षा कर दी। भोगमय जीवन वह भयावनी भूल-भुलैया है, जिसके चक्करमें पड़ते ही हम अपनी राह छोड़ बेराह चलने लगते हैं और अनेकों जन्म चक्कर काटते ही बीत जाते हैं। कल्याणके मार्गमें जहाँसे चलते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं आ जाते हैं—एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाते।

कच्चा वैराग्य सदा धोखा देता है। मैं समझता था कि इस कच्ची उम्रमें भी मेरी लगन सच्ची है, परंतु मिथुनचारी मत्स्यराजकी संगतिने मुझे इस मार्गमें ला घसीटा। सच्ची विरति हुए बिना भगवान्की ओर बढ़ना प्रायः असम्भव-सा ही है। इस विरतिको लानेके लिये साधु-संगति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। बिना आत्म-दर्शनके यह जीवन भारभूत है। अब मैं अधिक दिनोंतक इस बोझको नहीं ढो सकता।

× × ×

दूसरे दिन लोगोंने सुना—महर्षि सोभरिकी गृहस्थी उजड़ गयी। महर्षि सच्चे निर्वेदसे यह प्रपंच छोड़ जंगलमें चले गये और सच्ची तपस्या करते हुए भगवान्में लीन हो गये। जिस प्रकार अग्निके शान्त होते ही उसकी ज्वालाएँ वहीं शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार पतिकी आध्यात्मिक गतिको देखकर पत्नियोंने भी उनकी संगतिसे सद्गति प्राप्त की। संगतिका फल बिना मिले नहीं रहता।

सर्वार्थसाधक भगवन्नाम

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार)

इस प्रबल कलिकालमें जीवोंके 'कल्याण' के लिये भगवान्का नाम ही एकमात्र अवलम्बन है।

'नहिं कलि करम न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥'

पर मनुष्यका जीवन आज इतना व्यस्त हो चला है कि वह कहता है कि 'मुझे अवकाश ही नहीं मिलता। मैं भगवान्का नाम कब तथा कैसे लूँ?' यद्यपि यह सत्य नहीं है। मनुष्यके लिये काम—सच्चा काम उतना नहीं है, जितना वह व्यर्थ कार्योंको अपना कर्तव्य मानकर जीवनका अमूल्य समय नष्ट करता है और अपनेको सदा काममें लगा पाता है। वह यदि व्यर्थके कार्योंको छोड़कर उतना समय भगवान्के स्मरणमें लगाये तो उसके पास भजनके लिये पर्याप्त समय है। पर ऐसा होना बहुत कठिन हो गया है। ऐसी अवस्थामें यदि जीभके द्वारा नाम-जपका अभ्यास कर लिया जाय तो जितनी देर जीभ बोलनेमें लगी रहती है, उसके सिवा प्रायः सब समय—सारे अंगोंसे सब काम करते हुए ही नाम-जप हो सकता है। जीभ नाममें लगी रहती है और काम होता रहता है। न काम रुकता है, न घरवाले नाराज होते हैं। वाद-विवाद तथा व्यर्थ बोलना बन्द हो जानेसे मनुष्यकी वाणी पवित्र और बलवान् हो जाती है, झूठ-निन्दासे मनुष्य सहज ही बच जाता है, वाणीके अनर्गल उच्चारणसे होनवाले बहुत-से दोषोंसे वह सहज ही छूट जाता है। नाम-जपसे पापोंका निश्चित नाश, अन्तःकरणकी शुद्धि होती है, उसकी तो सीमा ही नहीं है। इसलिये ऐसा नियम कर लेना चाहिए कि सुबह उठनेके समयसे लेकर रातको सोनेके समयतक जितनी देर आवश्यक कार्यसे बोलना पड़ेगा, उसे छोड़कर शेष सब समय जीभके द्वारा भगवान्का नाम जपता रहूँगा। अभ्याससे जितना ही यह नियम सिद्ध होगा, उतना ही अधिक भगवान्की कृपासे मानव-जीवन परम और चरम सफलताके समीप पहुँचेगा।

भगवान्के नाममें कोई नियम नहीं है। सभी जातिके, सभी वर्गके, सभी नर-नारी, बालक-वृद्ध, सभी समय, सभी अवस्थाओंमें, भगवान्का नाम जीभसे जप सकते हैं, मनसे स्मरण कर सकते हैं। भगवान्का नाम वही, जो जिसको प्रिय लगे—राम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, शिव, महादेव, हर, दुर्गा, नारायण, विष्णु, माधव, मधुसूदन आदि कोई भी नाम हो। भगवान्का नाम ले रहा हूँ, इस भावसे जपना चाहिये।

(१) जिनको समय कम मिलता हो—बोलना अधिक पड़ता हो—ऐसे लोग जैसे वकील, अध्यापक, दूकानदार आदि—वे घरसे कचहरी, विद्यालय और दूकानपर जाते-आते समय रास्तेमें भगवान्का नाम लेते चलें और हो सके तो मनमें स्मरण करते चलें।

(२) विद्यार्थी स्कूल-कालेज जाते-आते समय भगवान्का नाम लें।

(३) किसान हल जोतते, बीज बोते, निराई करते, पौधा लगाते, पानी सींचते, खाद देते, खेती काटते आदि समय भगवान्का नाम जपें।

(४) मजदूर हाथोंसे हर प्रकारका काम करते रहें और नाम जपते रहें। घरसे कामके स्थानपर जाते-आते समय नाम-जप करें।

(५) उच्च अधिकारी, मिनिस्टर, सेक्रेटरी, जज, मुन्सिफ, जिलाधीश, परगना-अधिकारी, डिप्टी कलक्टर, पुलिस-अफसर, रेलवे-अफसर तथा कर्मचारी, डाक-तारके कार्यकर्ता, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी, इंजीनियर, ओवरसियर, जिलाबोर्ड तथा म्युनिसपलिटीके अधिकारी और कर्मचारी, बैंकोंके अधिकारी और कर्मचारी—सभी अपना-अपना काम करते तथा जाते-आते समय भगवान्का नाम जीभसे लेते रहें।

(६) व्यापारी, सेठ-साहूकार, उद्योगपति, आढ़तिये और दलाल आदि सभी सब समय जीभसे भगवन्नाम लेते रहें।

(७) गृहस्थ माँ-बहनें चर्खा कातते समय, चक्की पीसते समय, पानी भरते समय, गौ-सेवा करते समय, बच्चोंका पालन करते समय, रसोई बनाते समय, धान कूटते समय तथा घरके अन्य काम करते समय भगवान्का नाम जपती रहें।

(८) पढ़ी-लिखी बहनें साज-श्रृंगार बहुत करती

हैं, फैशन-परस्त होती जा रही हैं, यह बहुत बुरा है; पर वे भी साज-शृंगार करते समय भगवान्का नाम जपें। अध्यापिकाएँ और शिक्षार्थिनी छात्राएँ स्कूल-कालेज जाते-आते समय भगवान्का नाम लें।

(९) सिनेमा देखना बहुत बुरा है—पाप है, पर सिनेमा देखनेवाले रास्तेमें जाते-आते समय तथा सिनेमा देखते समय जीभसे भगवान्का नाम जपें।

(१०) इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी नर-नारी सब समय भगवान्का नाम लें। सोनार, लोहार, कुम्हार, सुथार (बढ़ई), माली, नाई, जुलाहा,धोबी, कुर्मी तथा अन्य सभी भाई-बहनें अपना-अपना काम करते हुए जीभसे भगवान्का नाम लें।

आवश्यकता समझें तो जेबमें छोटी-सी या पूरी एक सौ आठ मनियोंकी माला रखें।

सब लोग अपने-अपने घरमें, गाँवमें, मुहल्लेमें अड़ोस-पड़ोसमें, मिलने-जुलनेवालोंमें इसका प्रचार करें। यह महान् पुण्यका परम पवित्र कार्य है। याद रखना चाहिये कि भगवन्नामसे सारे पाप-ताप, दुःख-संकट, अभाव-अभियोग मिटकर सर्वार्थसिद्धि मिल सकती है, मोक्ष तथा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति हो सकती है।

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

अर्थात् मनुष्योंमें वे भाग्यवान् और निश्चय ही कृतार्थ हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं भगवान्के नामका स्मरण करते हैं और दूसरोंसे करवाते हैं।

इस महान् कार्यमें सभी लगें, यह करबद्ध प्रार्थना है।

'बंदउँ नाम राम रघुबर को'

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥
बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥
महामंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥
जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥
सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपि जेईं पिय संग भवानी॥
हरषे हेतु हरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को॥
नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को॥
बरषा रितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।
राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥

गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं श्रीरघुनाथजीके नाम 'राम' की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु (अग्नि), भानु (सूर्य) और हिमकर (चन्द्रमा)-का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूपसे बीज है। वह 'राम' नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है; निर्गुण, उपमारहित और गुणोंका भण्डार है। जो महामन्त्र है, जिसे महेश्वर श्रीशिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है तथा जिसकी महिमाको गणेशजी जानते हैं, जो इस 'राम' नामके प्रभावसे ही सबसे पहले पूजे जाते हैं। आदिकवि श्रीवाल्मीकिजी रामनामके प्रतापको जानते हैं, जो उलटा नाम ('मरा', 'मरा') जपकर पवित्र हो गये। श्रीशिवजीके इस वचनको सुनकर कि एक राम-नाम सहस्र नामके समान है, पार्वतीजी सदा अपने पति (श्रीशिवजी)-के साथ रामनामका जप करती रहती हैं। नामके प्रति पार्वतीजीके हृदयकी ऐसी प्रीति देखकर श्रीशिवजी हर्षित हो गये और उन्होंने स्त्रियोंमें भूषणरूप (पतिव्रताओंमें शिरोमणि) पार्वतीजीको अपना भूषण बना लिया (अर्थात् उन्हें अपने अंगमें धारण करके अर्धांगिनी बना लिया)। नामके प्रभावको श्रीशिवजी भलीभाँति जानते हैं, जिस (प्रभाव)-के कारण कालकूट जहरने उनको अमृतका फल दिया। श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा-ऋतु है, उत्तम सेवकगण धान हैं और 'राम' नामके दो सुन्दर अक्षर सावन-भादोंके महीने हैं।

हममें परिवर्तन क्यों नहीं होता ?

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

हबीब अजमी बहुत पैसेवाले थे।

बसरेमें रहते—रुपया सूदपर उठाते।

सोच रखा था उन्होंने कि सूदखोरीसे जो आमदनी होगी, उसीसे अपना काम चलाऊँगा। मूलको छुऊँगा भी नहीं।

जिस दिन सूद न मिलता, उस दिन कर्जदारके घरसे खाने-पीनेकी कोई चीज ही उठा लाते और उसीपर वह दिन गुजार देते।

किसीके यहाँ सूद आसानीसे न मिलता तो हबीब कड़ाई भी बरतते।

एक दिन एक कर्जदारके यहाँ तकाजा करने पहुँचे तो पता चला कि वह घरपर ही नहीं है। उसकी बीबीने अपनी मजबूरी बतायी। मगर हबीब बिना कुछ लिये टलें कैसे ?

लाचार खानेकी कुछ बची चीजें उठाकर उस बेचारीने इनके हवाले कर दीं।

घर लौटे तो बीबी बोली—मियाँ, खाना पकानेके लिये न आटा है, न लकड़ी। आप फिर निकल पड़े और दूसरे कर्जदारोंको खटखटाकर लकड़ी और आटा ले आये। खाना बननेपर एक फकीर आया। हबीबने उसे यह कहकर वापस कर दिया—'जाओ जी, क्या रखा है हमारे पास। हमारे पास जो है वह दे देनेसे तुम तो अमीर बन नहीं जाओगे, हम अलबत्ता गरीब हो जायँगे।'

बीबी जब सालन उतारकर परोसने बढ़ी तो वह चौंक पड़ी—यह क्या! हाँड़ीमें तो सालनकी जगह खून-ही-खून भरा है।

पतिकी कंजूसीसे तंग आ चुकी थी वह भी। बोली—'देखो, यह है तुम्हारी बदबख्तीका—तुम्हारे बुरे कामोंका नतीजा।'

पत्थर पसीज उठा।

हबीबने अपने कान पकड़े। कहा—'तुम गवाह हो कि आजसे मैं अपनी जिन्दगी बदलनेका इरादा करता हूँ।'

× × ×

दूसरे दिन था जुमा।

हबीब घरसे निकला तो पासमें खेलनेवाले लड़के बोले—'देखो जी, वह आता है सूदखोर हबीब, हट जाओ रास्तेसे। कहीं ऐसा न हो कि उसकी धूल हमपर पड़ जाय और हम भी इसीकी तरह बदबख्त हो जायँ।'

चोटपर चोट!

हबीब सीधे पहुँचा प्रसिद्ध सूफी संत हसन बसरीके पास। उसने उनसे दीक्षा ली और वहीं तोबा कर ली।

लौटा तो सामनेसे उसका एक कर्जदार जा रहा था। उसे देखकर वह भागा। हबीबने कहा—'अब तुझे मुझसे नहीं भागना है, मुझे ही तुझसे भागना है।'

हबीबने सोच लिया कि अब न तो मैं सूद लूँगा और न मूल।

लौटते समय वे ही लड़के फिर खेलते मिले। लड़के इस दफा कह रहे थे—'हट जाओ जी, रास्तेसे। हबीब अब तोबा करके आ रहा है। ऐसा न हो कि हमारी धूल उसपर पड़ जाय और उसके कारण अल्लाह हमारा नाम गुनहगारोंमें लिख लें।'

हबीबका दिल भर आया!

कितना दयालु है ईश्वर! तोबा करनेकी देर नहीं कि उसने मेरा नाम नेकनामोंमें लिख लिया।

हबीबने घर आकर घोषणा कर दी—'मैंने सबका कर्ज छोड़ा।'

उसने अपनी सारी दौलत खुदाका नाम लेकर गरीबोंमें बाँट दी और नदी-किनारे जाकर एक झोंपड़ी डाल ली। वहीं रहकर साधना करने लगा।

× × ×

एक दफा हसन बसरी दज़लाके किनारे खड़े थे। हबीबने पूछा—'कैसे खड़े हैं उस्ताद ?'

बोले—'नावके इन्तजारमें हूँ।'

हबीबने कहा—'हसद, ईर्ष्या और दुनियाकी मुहब्बतको दिलसे निकाल दीजिये, बलाओंको गनीमत समझिये और खुदापर यकीन करके पानीपर पैर रखते

चले जाइये।'

हबीबने खुद वैसा करके दिखा दिया।

हसन बसरी यह देख बेहोश हो गये। होश आनेपर बोले—'हबीबने मुझसे ही ज्ञान सीखा और मुझे ही शिक्षा दी।'

बादमें उन्होंने हबीबसे पूछा—'तुम्हें यह मर्तबा कैसे हासिल हुआ?'

हबीबने जवाब दिया—'मैं दिल साफ करता रहा और आप कागज काला करते रहे!'

× × ×

फजील बिन अयाज डाकू थे।

डाकू ही नहीं, डाकुओंके सरदार।

लूटका माल साथियोंमें बाँट देते। अपनेको जो चीज पसन्द आती, सिर्फ उतनी अपने लिये रख लेते।

मगर तमाशा यह कि डाकू होते हुए भी बाकायदा नमाज पढ़ा करते, रोजा रखते—पूरी लगनके साथ।

बात बेतुकी-सी लगती थी, फिर भी फजील डाकू थे। एक स्त्रीसे फजीलको प्रेम हो गया।

लूटका अपना हिस्सा उसीके पास भेज देते। कभी-कभी उसके घर भी चले जाते।

एक रातकी बात है। फजील अपनी प्रेमिकाके घरपर टिके थे।

एक काफिला भी वहाँ आकर टिका। उस काफिलेके किसी आदमीने ऐसी एक आयत पढ़ी—

'क्या नहीं आया ऐसा वक्त ईमानवालोंके लिये कि उनके दिल अल्लाहके खौफसे डरें?'

फजीलको मानो तीर लगा।

कहने लगे—'अफसोस, अबतक मैं लूट-मारमें अपनी जिन्दगी बर्बाद करता रहा। अब वक्त आ गया है कि मैं खुदाकी राहपर चलूँ।'

और उस दिनसे फजील डाकूसे साधु बन गये।

× × ×

इब्राहीम बिन अदहम बलखके बादशाह थे।

कहते हैं कि एक रातको सोते समय छतपर उन्हें कुछ खटका हुआ।

आपने आवाज दी—'कौन है ऊपर?'

जवाब मिला—'तेरा कोई जान-पहचानवाला ही है।'

'क्या कर रहा है वहाँ?'

'ऊँट खो गया है, उसीको ढूँढ़ रहा हूँ।'

'तेरा ऊँट यहाँ महलकी छतपर मिलेगा?'

इब्राहीमने ताना कसा।

'बात तो तेरी ठीक है'—आवाज आयी—'पर शाही पोशाक पहनकर तख्तपर बैठनेसे तेरा खुदा तुझे मिल जायगा?'

इब्राहीमको तीर लगा। बलखकी बादशाहत ठुकरा दी उन्होंने। नेशापुरकी गुफामें जाकर तपस्या करने लगे। हफ्तेमें एक दफा जंगलसे लकड़ियाँ ले जाकर बाजारमें बेचते। कुछ पैसा खैरात करते, बाकीसे अपना हफ्तेभरका काम चलाते। कभी खैरातसे कुछ न बचता तो उपवास करते।

यह शाही लकड़हारा बहुत ऊँचा सूफी फकीर बना।

× × ×

एक दिन इब्राहीमने देखा कि एक शराबी जमीनपर पड़ा है। उसका मुँह मिट्टीसे सना था। आप बोले—'जिस मुँहसे अल्लाहका जिक्र होता है, उसे इस हालतमें नहीं रहना चाहिये।'

आपने पानी लाकर उसका मुँह धो दिया।

जब वह होशमें आया तो लोगोंने उसे बताया कि इब्राहीम साहब ऐसा कहकर तेरा मुँह धो गये हैं। उसपर इसका बहुत असर पड़ा। उसने तोबा की और वह ईश्वरकी आराधनामें लग गया।

इधर इब्राहीमने सपना देखा कि फरिश्ते उनसे कह रहे हैं—'ऐ इब्राहीम! तूने अल्लाहके वास्ते उस शराबीका मुँह धोया। अल्लाहने तेरा दिल धो दिया।'

× × ×

अबु हफ़्स हदाद एक बाँदीपर लट्टू थे।

पर अल्लाहकी इबादत फिर भी करते ही रहते थे।

एक जादूगरसे उन्होंने अपने दिलकी बात कही। बोला—देखो जी, इबादत और जादूमें मेल नहीं बैठता। तुम चालीस दिन इबादत मत करो। तब मैं जादू करूँगा।

चालीस दिन बाद जब ये उसके पास पहुँचे और वह जादू चलाने लगा तो उसका जादू कुछ असर ही न कर पाया। हैरान होकर बोला—'इन चालीस दिनोंमें तुमने कोई नेक काम तो नहीं किया? मेरा जादू काम नहीं करता है।'

हदाद बोले—'नेक काम तो कुछ किया नहीं। सिर्फ इतना ही किया है कि रास्तेमें जाते समय कंकड़-पत्थर उठाकर एक तरफ रख देता था कि कहीं किसीको ठोकर न लगे।'

जादूगर बोला—'तुम भी क्या आदमी हो? कितने अफसोसकी बात है कि तुम उस खुदाको याद नहीं करते जिसने इतनेसे मामूली नेक कामको कबूल करके मेरे जादूके असरको खतम कर दिया और उसने तुम्हारी चालीस दिनकी नाफर्मानीका कोई ख्याल नहीं किया।'

हदादको बड़ी शर्म लगी।

उनका 'इश्के मजाजी'—दुनियावी प्रेम 'इश्के हकीकी'—ईश्वरीय प्रेममें बदल गया।

× × ×

हबीब हों या फजील, इब्राहीम हों या हदाद, वाल्मीकि हों या नामदेव, सूरदास हों या बेमन्ना—हम देखते हैं कि पापी-से-पापी व्यक्ति भी एक क्षणमें बदल जाता है। उसकी जिन्दगी एकदम नया मोड़ ले लेती है। ऐसा मोड़ कि देखकर दाँतोंतले उँगली दबानी पड़ती है।

कलतक जो आदमी रुपये-पैसेके लिये, धन-दौलतके लिये, भोग-विलासके लिये, नाना प्रकारकी वासनाओंकी पूर्तिके लिये पागल था—आज वह ईश्वरके लिये पागल हो उठता है!

और हम? हममें कोई परिवर्तन क्यों नहीं होता? हम 'जस-के-तस' बने रहते हैं—गोलमटोल पत्थर; क्योंकि हम या तो यह मान बैठे हैं कि हममें कोई दोष नहीं, या यह मान बैठे हैं कि हम तो जो हैं सो ही रहनेवाले हैं, या हम अपने दोष मिटानेका भरपूर प्रयत्न नहीं करते। कभी-कभी एकाध क्षणके लिये किसी बातको लेकर दिल उचटता है, पर वह श्मशान-वैराग्य होकर ही रह जाता है।

बहुत हुआ तो हम शेखजीकी तरह अपनेको बहला लेते हैं—

हाथमें थी जामे मय—लबपर ख़ुदाका नाम था,
दीनो दुनियासे तअल्लुक शेखजीका काम था!

अथवा—

शामको ढाल ली औ सुबहको तोबा कर ली,
रिन्दके रिन्द रहे, हाथसे ज़न्नत न गयी!

पर ऐसी बातोंसे क्या होना-जाना है?

हमारा जीवन गलत रास्तेपर चलता चले और कभी-कभी हम अपनेको फुसलानेके लिये ईश्वरका भी नाम लेते रहें—तो उससे क्या होगा?

× × ×

सवाल है कि तब हम करें क्या?

रास्ता उसका भी है। पर हम उस रास्तेपर चलना भी तो चाहें सच्चे दिलसे।

उसके लिये हमें सबसे पहले बाहरके बजाय भीतरकी तरफ मुड़ना होगा।

'हम क्या हैं'—यह देखना होगा।

ऊपरसे हम क्या दिखते हैं, यह सवाल नहीं। सवाल यह है कि भीतरसे हम क्या हैं। ठीक कहा है किसीने—

अपने ऐबोंपर नज़र कर अपने दिलको पाक कर।
क्या हुआ गर खल्कमें तू पारसा मशहूर है!

जरूरत है दिलको पाक करनेकी, दिलको माँजनेकी।

घरकी संडासको जब मैं साफ करता हूँ, साइफनको पानीसे धोता हूँ, झाड़ू रगड़-रगड़कर उसकी काई और मैलको निकालता हूँ तो अकसर ही एक टीस निकल पड़ती है—'काश, इस तरह मैं अपना दिल धो पाता!' मुँहसे गुनगुनाकर ही रह जाता हूँ—

क्या कायाको मल मल धोवे,
मनका मैल निकाल प्यारे!

मनमें तो राग और द्वेषका, मद और मोहका विषय और विकारका अपार मल भरा पड़ा है। कौन दिन होगा ऐसा जब मैं उसे साफकर सफेद बना पाऊँगा? स्वच्छ, निर्मल, निष्कलंक। यह स्वच्छता, शुभ्रता, सफेदी भीतरकी चाहिये, ऊपरसे क्या!

खानए दिल है सफेद, इसकी सियाही दूर कर!
क्या सफेदीसे महल करता है तू अपना सफेद!

[क्रमशः]

साधकोंके प्रति—

[नाम-महिमा]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

(गर्ग-संहिता, द्वारका-खण्ड १२।१९)

भगवान्‌के नामकी अमित महिमा है। शास्त्रोंमें नामकी महिमा जो कुछ कही गयी है तथा संत-महात्माओंने नामके सम्बन्धमें जितना भी गुण-गान किया है, उसमें कहीं भी अर्थवाद नहीं है। जिस प्रकार भगवान्‌की महिमा अवर्णनीय है, उसी प्रकार नामकी महिमा भी अनिर्वचनीय है। वह कही नहीं जा सकती। स्वयं भगवान् भी अपने नामके गुणोंका पार नहीं पा सकते—

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥

(रा०च०मा० १।२६।८)

भूलसे लोग नाम और नामीको दो विभिन्न वस्तु तथा नामको नामीसे छोटा मानते हैं। नामका माहात्म्य अपार है, असीम है, अनन्त है। यदि कोई राजा अपने धनकी सीमा जानता है तो उसका धन ससीम ही माना जायगा, पर यदि स्वयं उसे उसकी थाह न हो, अर्थात् उसे पता न हो कि उसके पास कितना धन है तो उसका धन अनन्त, असीम कहा जायगा और यह समझा जायगा कि स्वयं राजा भी अपने धनकी परिमिति नहीं जानता। उपर्युक्त दृष्टान्त नाम-महिमापर किंचित् प्रकाश डालता है।

नाम और नामीमें छोटे-बड़ेकी बुद्धि नहीं करनी चाहिये। नामी अपने नामसे ही पहचाना जाता है। नामके बिना नामीकी पहचान ही नहीं हो सकती। हीरा हाथमें है, उसके मूल्यकी कल्पना भी है, पर पहचानते नहीं तो हाथमें आया हुआ हीरा भी काँच है। घरमें पारस होते हुए भी पहचानके बिना मनुष्य दरिद्र बना फिरता है।

पुराणोंमें भगवन्नामका पापके प्रायश्चित्त-रूपमें वर्णन किया गया है, परंतु पाप-नाश करनेके लिये यदि नामका प्रयोग किया जाता है तो यह एक प्रकारसे नामका अपमान ही है। जो वस्तु पैसोंमें मिल जाय, उसके लिये हीरा दे डालना बुद्धिमानी नहीं। शेरको कुत्तेपर नहीं छोड़ा जाता, उसे तो मदोन्मत्त गजराजपर ही छोड़ा जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेके पूर्व ही अन्धकार नष्ट हो जाता है और प्रकाश आ जाता है, उसी प्रकार भगवान्‌का नाम लेनेकी इच्छामात्रसे ही पाप भाग जाते हैं और परम प्रकाशका उदय हो जाता है। भगवान्‌का नाम भगवान्‌को तो प्राप्त करा ही देता है, साथ ही उसके परे भी हमें ले जाता है, जहाँ है—भगवत्प्रेम, जिसे पंचम पुरुषार्थ कहा गया है। जहाँ नाम है, वहाँ भगवान् हैं ही। नामका प्रयोग अधिकाधिक नाम-जपके लिये ही होना चाहिये। श्रद्धाका अभाव तथा स्वार्थका भाव ही हमें नामका यथार्थ फल प्राप्त नहीं होने देता। हमारे मनमें यह भाव घुसा हुआ है कि नामकी जो इतनी महिमा शास्त्रों और संतोंने गायी है, उसमें तथ्य कुछ नहीं है; हमें केवल भुलावेमें डालनेके लिये ही यह इन्द्रजाल रचा गया है।

जगज्जननी पार्वतीने एक बार शिवजीसे पूछा—

'महाराज! आप इतना राम-नाम जपते हैं और इसका इतना माहात्म्य बतलाते हैं। संसारके लोग भी इस नामको रटते रहते हैं; फिर क्या कारण है, उनका उद्धार नहीं होता?' महादेवजी बोले—'उनका राम-नामकी महिमामें विश्वास नहीं है।' परीक्षाके लिये वे दोनों काशीके एक घाटपर बैठ गये, जहाँसे लोग गंगा-स्नान करके राम-नाम रटते हुए लौट रहे थे। योजनानुसार महादेवजीने वृद्ध-शरीर बनाया और फिर एक कीचड़भरे गड्ढेमें गिर पड़े तथा वृद्धाके वेषमें पार्वतीजी ऊपर बैठी रहीं। जो भी व्यक्ति उस मार्गसे गुजरता, पार्वतीजी उससे कहतीं—'मेरे पतिको गड्ढेसे निकाल दो।' जो निकालने जाता उससे कहतीं, 'जो निष्पाप हो, वही निकाले; अन्यथा इन्हें छूते ही भस्म हो जायगा।' एक-पर-एक कई लोग आये, पर शर्त सुनकर लौट गये। सायंकाल हो आया; पर ऐसा कोई निष्पाप व्यक्ति न मिला। अन्ततः गोधूलिकी वेलामें गंगा-स्नान करके एक व्यक्ति आया और राम-नाम रटता हुआ वहाँ पहुँचा। माँ पार्वतीने उससे भी वही बात कही। वह निकालनेके लिये बढ़ा तो पार्वतीजीने एक बार फिर दोहराया—'निष्पाप व्यक्ति होना चाहिये; अन्यथा भस्म हो जायगा।' इसपर वह बोला—'गंगा-स्नान' कर चुका हूँ और राम-नाम ले रहा हूँ, फिर भी पाप लगा ही है? पाप तो एक बारके नाम-स्मरणसे छूट जाता है। मैं सर्वथा निष्पाप हूँ।' कहकर वह गड्ढेमें कूद पड़ा और बूढ़े बाबाको निकाल लाया। गौरी-शंकर अब उससे कैसे छिपे रहते। वह दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया।

एक हम हैं। गंगा-स्नान करते हैं, राम-नाम लेते हैं; परंतु अपनेको सर्वथा निष्पाप नहीं मानते। नाममें और गंगामें हमारा पूर्ण विश्वास नहीं है। जितनी शक्ति नाममें पाप-नाशकी है, उतनी शक्ति महापापीमें भी पाप करनेकी नहीं है। हम तो निरन्तर भगवान्के नामोंको बेचते हैं; परंतु नामकी महिमा इतनी अधिक है कि उसका संस्कार मिट नहीं सकता। भगवान्का नाम भगवान्की ही भाँति चेतन है और उसकी शक्ति भी अपरम्पार है। अवसर पाकर वह फिर पनप उठता है, लहलहा उठता है, फल-फूलोंसे भर जाता है और सारे अन्तःकरणको मधुमय, प्रकाशमय, आनन्दमय कर देता है। किसी भी पदार्थके लिये नामको बेचना अनुचित है—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

(रा०च०मा० ७।४३।२)

'राम-नाम' परम गुह्य मन्त्र है। हम इसका मूल्य अपने ज्ञान और अपनी दृष्टिके अनुसार ही आँकते हैं। बहुमूल्य मणिका मूल्य शाक-वणिक् क्या जाने? उसका सही मूल्य तो कोई जौहरी ही आँक सकता है। जिसकी जितनी पहुँच है, उतना ही अधिक मूल्यवान् उसके लिये राम-नाम है। नाममें प्रीति और आनन्द बढ़ता है, फिर तो नामको छोड़ते ही नहीं बनता। उसके प्रति एक सहज आकर्षण उत्पन्न हो जाता है।

नामका प्रयोग तीन प्रकारसे होता है—जप, स्मरण और कीर्तन। नाम-जप गुप्त हो, प्रेमपूर्वक हो और निष्कामभावसे हो। जपकी शक्ति अपार है, वह सारे अन्तःकरणको निर्मल कर देता है। स्मरण वह उत्तम है, जिसमें चित्त भगवान्में लगा ही रहे, एक क्षणके लिये भी इधर-उधर न हिले-डुले। कीर्तन वह उत्तम है, जो जोर-जोरसे हो। कीर्तनमें यह भाव न आये कि लोग हमें देख रहे हैं। वह तो प्रभुके प्रेमसे पूर्ण होता है, वहाँ प्रभुके अतिरिक्त कोई रहता ही नहीं।

श्रीमद्भागवतमें कीर्तनके सम्बन्धमें कहा गया है—

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥

(११।२।३९)

(मनुष्यको चाहिये कि वह) 'चक्रपाणि भगवान् विष्णुके परममङ्गलमय लोक-प्रसिद्ध जन्म, कर्म और गुणोंको सुनता हुआ और उनकी विचित्र लीलाओंके

अनुसार रखे गये नामोंका निःसंकोच होकर गान करता हुआ असङ्ग भावसे संसारमें विचरे।'

अर्थात् कीर्तन करे मस्त होकर। अपने-आपको भूल जाय। लोक-लाज छोड़ दे। मान, पूजा आदिमें आसक्ति न हो। यदि लोगोंको दिखलानेमें आसक्ति है, यदि धनमें आसक्ति है तो वह कीर्तन कीर्तन नहीं। आसक्ति भगवान्‌की लीलामें रहे, लीला सुनते-सुनते अघाये नहीं, गाते-गाते थके नहीं। इतना पागल हो जाय कि सब कुछ भूल जाय, केवल नामासक्त होकर, मस्त होकर कीर्तन ही करता रहे।

एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४०)

'इस प्रकारका व्रत धारण करनेके फलस्वरूप अपने परमप्रिय प्रभुके नाम-संकीर्तनमें अनुराग हो जानेसे वह भाग्यशाली पुरुष अलौकिक भावसे कभी खिलखिलाकार हँसता है, कभी रोता है, कभी चिल्लाता है, कभी उच्चस्वरसे गाने लगता है और कभी उन्मत्तके समान नाच उठता है।'

भगवान् ही हमारे परम प्रियतम, परम प्यारे हैं। उनका नाम ही तो प्राणोंका आधार है। उनका नाम लेते ही हृदयमें अमृतका सागर उमड़ आता है। प्रेमकी विह्वलतामें अपने-आप हम डूब जाते हैं। लोक-परलोकका ध्यान ही नहीं रहता। प्राण भले ही छूट जायँ, पर नाम नहीं छूटता।

भगवान् ही हमारे परम प्रियतम हैं—यह है ज्ञान। उनके अतिरिक्त मुझे कुछ भी नहीं चाहिये—यह है वैराग्य। ऐसे ज्ञान और वैराग्यको प्राप्त होनेपर ही सच्चे प्रेमका प्रादुर्भाव होता है। भगवान्‌के चरणोंमें दृढ़ अनुराग होनेपर ज्ञान और वैराग्य उस परमप्रेममें लीन हो जाते हैं। वहाँ ज्ञान-वैराग्य दीखते नहीं, केवल प्रेम ही रह जाता है।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४२)

'भगवान्‌का भजन करनेवाले पुरुषोंमें प्रभुका प्रेम, उनके स्वरूपका अनुभव और अन्य वस्तुओंमें वैराग्य—तीनों एक कालमें ही उत्पन्न होते हैं। जिस प्रकार भोजन करनेवालेको भोजनके समय उसके साथ-साथ ही तुष्टि, पुष्टि और क्षुधा-निवृत्ति तीनों होती जाती हैं।'

विश्वास होनेपर भगवान् शीघ्र आविर्भूत होकर दर्शन देते हैं। वहाँ भगवान् प्रियतमरूपसे मिलते हैं। एकमात्र परम प्रियतम भगवान्‌को सर्वत्र देखना और उनके स्मरणमें मस्त होकर नाच उठना ही प्रेमकी परम सनातन दिव्य धारा है। जो प्रेमको नापना चाहता है, वह प्रेमको नहीं जानता। प्रेमका स्वरूप अनिर्वचनीय है। कैवल्यके मोलमें यह प्रेम खरीदना होता है। इस परम प्रेमकी प्राप्तिका एकमात्र साधन है—कीर्तन।

जहाँ दर्शकोंके मनोरंजनका ध्यान है, वहाँ कीर्तन बाजारू हो जाता है, बाह्य हो जाता है। कीर्तनमें तो आँख और मन—दोनों भगवान्‌की ओर जाते हैं। जहाँतक कीर्तनका शब्द गूँजता है, वहाँतक पाप फटकने नहीं पाता। कीर्तन सारे वातावरणको शुद्ध कर देता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके कीर्तनसे वनके हिंसक पशु भी प्रेममें विभोर हो जाते थे। कीर्तन करते हुए महाप्रभुको जिसने छू लिया, वही प्रेममें पागल होकर नाचने लगा।

मनुष्यको चाहिये कि वह जगत्‌के भोगोंसे विरक्त होकर, सर्वथा असंग होकर विचरण करे और लोक-लाज छोड़कर प्रभु-प्रेममें मस्त हो आनन्दसे नाच उठे—रोम-रोमसे बस एक नाम-ध्वनि निकलती रहे। इससे आगे और चाहिये ही क्या?

कहानी—

पगली

(पं० श्रीकृष्णानन्दजी अग्निहोत्री)

उसके मुखसे तेज टपकता था। ऐसा मालूम होता था कि ज्ञान और वैराग्यका स्रोत बह रहा है। मगर उसके गुणोंको पहचाननेवाला उस गाँवमें कोई न था। लोग उसे 'पगली' कहा करते थे। उसके कार्योंसे भी यही निश्चित किया जा सकता था कि वह पगली है। उसकी परवा किसीको भी न थी और न वह खुद किसीकी परवा करती थी। हाँ! परवा करती थी उनकी, जो उसके हृदयमें बसे हुए थे। उन्हींके लिये उसने लोक-लाज, मान-मर्यादा—सबका त्याग कर दिया था।

बचपनमें ही उसके माता-पिता परलोक सिधार गये थे। वे कुलीन थे। जब 'पगली'के घरमें कोई न रहा, तब उसके पड़ोसके एक ब्राह्मणने दया करके अपने पास रखा। उन ब्राह्मण-देवताका नाम था पं० लक्ष्मीनारायण। बहुत ही सज्जन थे वे। प्रात:काल उठकर दो-ढाई घण्टेतक ईश्वराराधन किया करते थे। 'पगली' भी उनका साथ देती। जबतक 'पगली' ना-समझ थी, वह पण्डितजीके पास ही बैठकर भगवान्‌की मूर्तिकी ओर एकटक निहारती और कुछ गुनगुनाकर कहती। पूजाके लिये वह फूल तोड़ लाती और अनन्य प्रेमसे भगवान्‌का शृंगार करती! उसके इस सरल, भक्तिपूर्ण भावसे पं० लक्ष्मीनारायणका हृदय भी भर आता।

पं० लक्ष्मीनारायणने उसकी लगन देखकर उसे उपदेश देना शुरू कर दिया। बड़े प्रेमसे वे उसे भागवत, रामायण आदि ग्रन्थ विस्तारपूर्वक सुनाते और समझाते। ज्ञान और वैराग्यका भी विवरण पूर्णतया कर दिया था। थोड़े ही दिनोंमें 'पगली'का भगवान्‌के प्रति विश्वास तथा प्रेम और इस मिथ्या जगत्‌के प्रति अविश्वास और घृणासे हृदय भर उठा। उसका ज्ञान कार्यरूपमें परिणत हो गया और क्रमश: उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता गया। यहाँतक कि पं० लक्ष्मीनारायण स्वयं उससे अपनी त्रुटियाँ जानने लगे। पगलीको देखकर पण्डितजीका हृदय गद्‌गद हो जाता। मगर यह सुख उनको अधिक समयके लिये न मिल सका। उनका कार्य समाप्त हो चुका था। उनका कार्य इतना ही था कि वे भगवद्दत्त पात्रमें भगवद्दत्त रस भर दें और उसे भगवदर्पण करके भगवद्धाममें चले जायँ। ऐसा ही हुआ।

पगली अकेली पड़ गयी। पगलीका इस संसारमें अब कोई न रह गया। उसे अब अकेला रहना होगा। पगलीको पण्डितजीके देहान्तका सांसारिक दु:ख न था। दु:ख था केवल इस बातका कि वह उनकी सेवा न कर सकी थी।

× × ×

इस समय उसकी उम्र बीस वर्षके लगभग थी। उसे संसारका पूर्णतया ज्ञान था। वह सुन्दरी थी! रूप मनुष्यको न जाने किस वक्त अन्धा बना दे। वह अच्छी तरह जानती थी कि उसका रूप और उसकी आयु उसके सबसे बड़े शत्रु हैं। इनका उसने अच्छा प्रतिकार कर रखा था। उसने अपने केशोंको जटाओंके रूपमें परिणत कर लिया और उन जटाओंको अपने मुखपर बिखेरे रहा करती थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें जटाओंमें छिप जाती थीं। अपने शरीरपर वह सदा धूल लपेटे रहती थी। गाँवमें जब वह निकलती, एक विचित्र शब्द करती हुई चलती। लोग उसे पगली कहने लगे थे। कोई भी उसे पहचान न सका।

× × ×

वह पगली जरूर थी; मगर लोग यह भी जानते थे कि गाँवमें जहाँ कहीं भी हरि-चर्चा होगी, वहाँ पगली सबसे पहले पहुँचेगी। लोग जानते थे कि पगली स्वभावत: भगवान्‌के गुणानुवाद सुनने आ जाती है। वह कभी बोलती जरूर नहीं, पर बात सबकी समझती थी। वह पूर्णतया विक्षिप्त नहीं थी। उसके कुछ कार्य ऐसे थे, जो बड़ों-बड़ोंको विस्मयमें डाल देते थे।

एक बार गाँवमें एक बहुत ही विद्वान् पण्डितका आगमन हुआ। ग्रामवासियोंने पण्डितजीके सामने भागवत सुनानेका प्रस्ताव रखा। पण्डितजी सहमत भी हो गये। पण्डितजी एक-ही-दो रोज रुक सकते थे। उतने समयमें पूरी कथा नहीं सुनायी जा सकती थी। इसलिये उन्होंने दशमस्कन्धसे श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन करना ही

उपयुक्त समझा। भगवान्‌की लीलाएँ सुनकर किसे आनन्द नहीं होता। फिर ऐसे सुचारुरूपसे वर्णित प्रसंगोंको पण्डितजीके रसीले और कोमल कण्ठसे निकली हुई व्याख्याके साथ कौन नहीं सुनता।

गाँवमें पाठ होने लगा। गाँवभरके लोग जमा हुए। पगली सबसे पहले बैठी थी। उसका स्थान पण्डितजीके आसनसे बिलकुल मिला ही हुआ था। एक तरफ महिलाओंका समाज और दूसरी ओर पुरुषोंका! समाँ बँधा हुआ था। 'रुक्मिणी-हरण' लीला चल रही थी! सबके श्रवण भागवतामृतका पान कर रहे थे। पण्डितजीने बड़े ही सुरीले कण्ठमें कहा—

यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।
यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात्॥

सब लोग निस्तब्ध थे। अभीतक पगलीके केवल आँसू ही निकल रहे थे, मगर इस श्लोकको सुनते ही वह फूट पड़ी। वह आवेशको न रोक सकी। उसे सुध-बुध न रह गयी। उसे मूर्च्छा आ गयी। कुछ भक्तजनोंके मुँहसे निकल ही तो पड़ा, 'धन्य है! कितना गाढ़ प्रेम है!'

कथाको आरम्भ हुए देर हो चुकी थी। अध्याय भी समाप्त ही था! पगली ही कथाकी समाप्तिका कारण बनी। लोगोंने उसे घेर लिया। कोई हवा करने लगा और कोई ठण्डे जलके छींटे देने लगा! सब लौकिक उपचारमें लीन थे। मगर किसीको यह न मालूम था कि इस समय पगली स्वयं ही रुक्मिणीके स्थानमें थी और भगवान्‌का आवाहन कर रही थी। वह दूसरे ही संसारमें थी। वह देख रही थी कि भगवान् उसकी पुकार सुनकर दौड़े आ रहे हैं! उन्होंने आकर उसकी ओर प्रेमभरी मुसकानसे देखा! पगली कृतकृत्य हो गयी! उसने अपनी आँखें प्रेमसे विह्वल होकर मूँद लीं।

जब उसने आँखें खोलीं तो देखा गाँववाले उसे घेरे खड़े हैं। उसने तुरंत अपना शरीर सँभाला और पगलीका अभिनय करती हुई वहाँसे चली गयी!

× × ×

पगलीमें केवल भक्ति ही नहीं थी! उसे तो सब जीवोंमें भगवान्‌की ही झलक दिखलायी पड़ती थी। वह जब कभी एकान्तमें होती, गुनगुनाने लगती—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

किसी भी जीवको यदि वह दुखी देख लेती तो स्वयं बहुत दुखी होती और उसके दुःख-निवारणके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करती और स्वयं भरसक प्रयत्न करती।

एक बार उसके गाँवका एक गरीब बालक बीमार पड़ा। उसकी आयु चौदह-पन्द्रह वर्षकी थी! उसके कोई भी नहीं था। गाँवमें धनी लोगोंके यहाँ कुछ काम कर देता था और उसके बदलेमें जो कुछ मिल जाता, उसीसे उदर-पूर्ति कर लेता था। इस समय वह असहाय था। वह चारपाईसे उठ भी नहीं सकता था! पगलीको किसी प्रकार इसकी खबर लगी। वह निरन्तर उसी बालकके यहाँ रहने लगी। यह उसकी कोई नयी आदत न थी। कई बार ऐसा हो चुका था।

तीन दिनसे उस बालककी हालत बहुत ही खराब थी। पगली रातमें भी वहीं रहने लगी! उस रातको उसके बचनेकी आशा न थी! पगली तीन रोजसे बिलकुल न सो सकी थी। दो बजेके लगभग उसे जोरकी झपकी आयी। बालक जग रहा था। वह पगलीको समझना चाहता था। उसका हृदय तो वह अच्छी तरह समझ चुका था, मगर उसका वेष और हाव-भाव नहीं समझ पाया था। वह बड़ी दुविधामें था। उसका हृदय कहता था यह पगली नहीं, देवी है! मगर लोग और उसके हाव-भाव यही कहते थे कि वह पगली है! वह इसी विचारमें लीन हो गया था। उसे यह नहीं मालूम था कि उसकी क्या हालत है।

पगली स्वप्न देख रही थी। वह भगवान्‌के पास पहुँच गयी है। भगवान् सामने खड़े मुसकरा रहे हैं। उनका अभय हस्त उसके सिरपर है! उसने भगवान्‌से प्रार्थना की—'देव! इस बालकको स्वस्थ कर दो।' भगवान्‌ने 'एवमस्तु' कहा और अन्तर्धान हो गये।

वास्तवमें तो वह स्वप्न देख रही थी, मगर वह वाक्य उसके मुखसे निद्रावस्थामें निकल पड़ा! बालकका ध्यान टूट गया। उसको आश्चर्य हुआ। पगली कुछ कह रही है! इसके पहले गाँवके किसी भी पुरुष या स्त्रीने

पगलीके मुखसे कोई भी सार्थक शब्द न सुना था।

बालकने देखा, पगली सो रही है! जब वह जगा, तब उसने पगलीसे कहा, 'माँ! मेरी आखिरी बात मान लो! अब मैं थोड़ी ही देरका मेहमान हूँ। अब तुम अपनेको मुझसे न छिपाओ! मैंने सुना है कि तुम स्वप्नमें किसीसे कह रही थी—'देव! इस बालकको स्वस्थ कर दो।' अब छिपानेसे कोई लाभ नहीं। माँ! जल्दी कहो न।'

पगली अपनेको न रोक सकी। उसके आँसू बह रहे थे। उसने बालकको अपना ही पुत्र समझा और उससे स्वप्नका हाल तथा अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पगलीका हाल सुनकर—उसके त्याग, भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका हाल सुनकर बालकको रोमांच हो आया। उसकी पगलीके प्रति श्रद्धा जाग उठी और भगवान्‌में भी अनन्य प्रेम तथा विश्वास हो गया। उसने पगलीको अपनी माता मानकर प्रणाम किया।

× × ×

बालक अब स्वस्थ हो गया था। पगलीने उसे मना कर दिया था कि वह किसीको भी यह सब वृत्तान्त न सुनाये। बालक भी अब पगलीके साथ ही रहने लगा और शिक्षा पाने लगा।

× × ×

पगलीका प्रात:कालका नियम था कि वह सबसे पहले जाकर नदीमें स्नानकर लौट आती थी। यह क्रम उसका प्रतिमासका था। जाड़ेके दिन थे। सर्दी भी अधिक पड़ रही थी। मगर पगलीको शीतका कुछ भी डर न था। वह नित्य-प्रति सदाकी भाँति स्नान करने जाती थी। एक दिन उसे सर्दी लग गयी। घर लौटते-लौटते उसे बहुत तीव्र ज्वर हो आया। उसके सारे शरीरमें पीड़ा होने लगी और बढ़ती ही गयी। उसकी हालत दिन-प्रति-दिन खराब होती गयी। बालक उसकी शुश्रूषा करता था। मगर वह निराश हो उठता था। वह इस चिन्तामें था कि पगलीके बाद उसे धर्मपथ कौन सिखायेगा। वह तरह-तरहकी चिन्ताओंसे व्याकुल हो उठता था। मगर इसपर उसका कोई वश न था।

पगलीके दिन प्राय: समीप थे। अब वह मृत्यु-शय्यापर पड़ी थी। उसे उन्माद हो गया था। उस उन्मादमें कभी वह गीताका पाठ करने लगती और कभी भगवत्कीर्तन करते-करते उठ खड़ी होती। बालक यह अवस्था देखकर घबरा गया। लाचार था। वैद्योंने एक 'पगली' का उपचार करनेसे इनकार कर दिया था।

थोड़ी देरके लिये 'पगली' शान्त हुई और उसने बालकको बुलाकर कहा, 'बेटा! बुरा न मानना, मेरा समय अब आ गया है। मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ। संसारमें विषयोंके संगके कारण ही मनुष्यको फिर जन्म लेना पड़ता है। मैंने सबसे छुटकारा पा लिया। तुम्हें मालूम है—मैं आजन्म कुमारी ही रही। मैंने तुम्हें पुत्र-सा मानकर रखा है; मगर मैं यह नहीं चाहती कि इस स्नेहके कारण मुझे फिर जन्म लेना पड़े। यह स्नेह मेरी आत्मापर कोई प्रभाव नहीं डाल सकता। मैं मोहमें नहीं फँसी हूँ। फिर भी तुम्हारा कल्याण ही मेरा मनोरथ है। तुम भी इस संसारसे अलग ही रहना। अपने गुरुके स्थानपर कमलको रखो। देखो, वह जलमें ही उत्पन्न होता है। जलसे ही उसकी शोभा है, बेटा! मगर क्या कभी जल कमलके ऊपर असर कर सकता है। एक बिन्दु भी कमलपर नहीं ठहर सकता। बेटा! हम लोगोंका जीवन इन्हीं विषयोंसे घिरे हुए वातावरणमें हुआ है। इन्हींके सहारे हम जीते हैं। मगर देखो, ये हमपर असर न कर पायें।'

'पगली' कहते-कहते सहसा रुक गयी। उसकी दृष्टि छतकी ओर एकटक लगी हुई थी। वहाँ वह देख रही थी—भगवान् खड़े हैं, पीताम्बर धारण किये हैं। एक हाथमें मुरली लिये हैं। अधरोंपर मीठी मुसकान थी। उन्होंने कुछ इशारा किया। पगलीके ओठ खुल गये। एक हलकी-सी मुसकान फूट पड़ी। उसके मुखसे यह मन्त्र निकला—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**'

पगलीकी आत्मा उसके प्रियतममें मिल गयी थी। वह अब आवागमनके चक्रसे मुक्त थी। एक स्त्री होकर उसने वह किया, जो बड़े-बड़े वीर, साहसी, मनस्वी मुनिगण बड़े परिश्रमके बाद भी करनेमें असफल ही रहते हैं। भगवान्‌के भक्तोंकी लीला न्यारी ही है।

'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!'

प्रेमका पंथ निराला

(पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०)

याः पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ताः सखि योषितः।
अस्माकं तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणी॥

श्रीराधारानी अपनी सखीसे कहती हैं, हे सखी! वे स्त्रियाँ धन्य हैं, जो प्रियतम श्यामसुन्दरका स्वप्नमें तो दर्शन कर लेती हैं, पर मुझ दुखिनीके भाग्यमें तो वह भी नहीं है। मेरे लिये तो वैरिणी निद्रा भी श्रीकृष्णके विदा होते ही साथ ही चली गयी है। मैं निद्रामें होऊँ तब तो स्वप्न आये।

अहा! धन्य है! निद्रा आये भी तो कैसे आये? आँखोंमें तो प्यारेके रूपने अड्डा जमा लिया है, अब वहाँ किसी औरके प्रवेशका अवकाश ही कहाँ रहा है? एक म्यानमें दो तलवारें आ भी कैसे सकती हैं? बाबा सूरने चित्रण किया है कि गोपी कहती है—

नाहिंन रह्यो हिय में ठौर।
नन्द नन्दन अछत कैसे, आनिये उर और॥
चलत, चितवत, दिवस जागत, सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह श्याम मूरति, छिन न इत उत जात॥
श्याम गात सरोज आनन, ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन, मरत लोचन प्यास॥

देवर्षि नारदजी इसीलिये अपने भक्तिसूत्रोंमें कहते हैं—

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति।

अर्थात् उस प्रेमको प्राप्त करके उसीको देखता है, उसीको सुनता है, उसीको बोलता है और उसीका चिन्तन करता है। नारदने इस प्रेमकी छः विशेषताएँ बतलायी हैं—

गुणरहितं, कामनारहितं, प्रतिक्षणवर्द्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम्॥

वह प्रेम—१-गुणरहित, २-कामनारहित, ३-प्रतिक्षण बढ़नेवाला, ४-कभी न टूटनेवाला, ५-अत्यन्त सूक्ष्म और ६-अनुभवस्वरूप होता है।

पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी रामहर्षणदासजी महाराजने भी इस प्रेमतत्त्वके विषयमें कहा है—

प्रेम का पंथ निराला।
कमल तंतु ते पतरो प्यारो, सूक्ष्म ते सूक्ष्म विशाला॥
गुण ते रहित कामना हीना, एकांगी ब्रत पाला।
अनुभवगम्य अनिर्वचनीया, अमल अगाध रसाला॥
तत् सुख सुखी स्वभाविक इक रस, वर्धमान सब काला।
रसमय हृदय गुफा ते निकसत, उर्ध्वजात तजि जाला॥
परम पवित्र दोष-दुख दारक, पथिकहिं करत निहाला।
'हर्षण' हरि-तोषक दिल-द्रावक, प्रेमहिं बनै विहाला॥

आचार्योंने भी इस प्रेमतत्त्वको कमलतन्तुसे भी सूक्ष्म कहा है। देवर्षि तो इसे सूक्ष्म ही नहीं सूक्ष्मतर कहते हैं। जहाँ मुक्तिकी भी स्पृहा एक पिशाची ही कही गयी है। वहाँ मोक्षेच्छा भी प्रेमीके प्रेममें व्यवधान डाल सकनेमें समर्थ नहीं है।

ब्रजकी ग्वालिन ब्रह्माजीसे प्रार्थना करती हैं कि हमें मिट्टी बना दो, मिट्टी बनेंगी तो कभी कुम्हार खोदकर कुल्हड़ या प्याला बनायेगा, उसमें जल या शर्बत भरा जायगा और वह श्यामसुन्दरके हाथमें जाकर उनके अधरतक पहुँचेगा। इस शरीरसे तो अब उनतक पहुँच होनी नहीं है।

भक्तिरसामृतसिन्धुकार कहते हैं—

पञ्चत्वं तनुरेत भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटं
धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा तत्रापि याचे वरम्।
तद्वापीसु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयाङ्गने
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलः॥

प्रेमी कहता है कि 'यह शरीर तो नश्वर है, अतः मृत्युको प्राप्त होगा ही। मृत्यु होनेपर शरीरके पाँच तत्त्व अपने-अपने महाभूतोंमें मिल जायँगे। वे मिल जायँ, किंतु सिरसे प्रणाम करके हम ब्रह्मासे यह वरदान माँगते हैं कि हमारे शरीरका जलका अंश प्यारेकी उस बावलीमें मिले, जिसके जलका वे उपयोग करते हैं। हमारे देहकी ज्योति उनके दर्पणमें समा जाय। आकाश तत्त्व उनके आँगनके आकाशमें मिल जाय, हमारे शरीरकी मिट्टी उस मार्गपर पड़े, जिसपर वे चलते हों और हमारा श्वास, हमारे प्राण उनके पंखेकी वायुमें मिल जायँ।'

यह प्रेमी प्रेमास्पदके अन्तर्देशमें प्रवेश करके, उसके एक-एक रोमको परिप्लुत कर देता है। प्रेमीका नहाना, खाना, सोना, जागना सब प्रेमास्पदके लिये ही होता है। प्रेम और प्रेमीकी क्रियाएँ घुलकर एक दिव्य रसायन बन जाती हैं।

यह केवल भुक्तभोगियोंके अनुभवमें ही आनेवाला है। किसी कविकी कल्पना और लेखकके चिन्तनकी

सीमामें आ सकनेवाला यह तत्त्व कहाँ है? मतवाली मीराने भी तो गाया था—

हे री मैं तो दरद दिवानी मेरो दरद न जाणै कोय।
घायल की गति घायल जाणै जो कोइ घायल होय॥
जौहरिकी गति जौहरी जाणै की जिन जौहर होय।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस बिध होय॥
गगन मँडलपर सेज पियाकी किस बिध मिलणा होय॥
दरदकी मारी बन-बन डोलूँ बैद मिल्या नहिं कोय।
मीराकी प्रभु पीर मिटेगी जद बैद साँवलिया होय॥

प्रेमके स्वरूपको तो प्रेमी ही ठीकसे समझ सकता है। हम-जैसे कामिनी, कंचन और कीर्तिके मलमें लिपटे हुए पामर प्राणी तो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं। हम-जैसे कलिके जलके महामीनोंको ही देखते हुए कहा गया है—

तू क्यों प्रेम की बात करे।
निज सुख चाह भरी जब हिय में, प्रिय नहिं सूझ परे॥
काम प्रपूरित हृदय देश तव, राग की वह्नि बरे।
आत्म समर्पण कियो न सब बिधि, अह मम लगे गरे॥
प्रेम तथा प्रेमास्पद महिमा, जान न नेक अरे।
भयो अनन्य न तै प्रियतम को, कैसे प्रीति भरे॥
बनि स्वतंत्र विचरत मनमानी, नहिं भव भीति डरे।
'हर्षण' आपा खोय भजै प्रभु, चहै जो प्रेम झरे॥

(प्रेमवल्लरी ९६)

यह सच्चिदानन्द तत्त्व यद्यपि अनिर्वचनीय है, फिर भी जैसे अपार वारिधिवत् श्रीरामचरितकी अगमताको जानते हुए भी लोग अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका गायन करते ही हैं। श्रीरामकथाके पात्रोंमें कुमार भरत इस प्रेममार्गके परमाचार्यके रूपमें दिखायी देते हैं। महर्षि भरद्वाज कहते हैं कि भइया भरत! मुझे ऐसा लगता है कि तुम भरत नहीं, बल्कि स्वरूपधारी श्रीराम-प्रेम ही हो।

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

वस्तुत: श्रीभरतजीका व्यक्तित्व है ही ऐसा कि जिसमें प्रेमदेवताके प्रत्येक विलासकी उर्मियाँ अठखेलियाँ करती दिखायी देती हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने इन विरही युवराजकी उस रहनीका शब्दचित्र, जब वे चित्रकूटसे लौटकर अयोध्या आते हैं और नन्दिग्राममें निवास करने लगते हैं, इसे कितनी मार्मिकतासे उकेरा है, द्रष्टव्य है—

मोहिं भावति, कहि आवति नहि भरतजू की रहनि।
सजल नयन सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम गरुअ गहनि।
दिन दिन पन-प्रेम-नेम निरुपधि निरबहनि॥
सीता-रघुनाथ-लषन-बिरह-पीर सहनि।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि॥

श्रीभरतजीकी रहनी कथनीकी बात नहीं, बल्कि अनुभूतिकी वस्तु है। निरन्तर सजल नेत्र और शिथिल वाणीसे प्रियतमके गुणगणोंका गायन करना, भोजन, वस्त्र-निवास एवं शयन-सम्बन्धी कठोर नियमोंका वरण करना। दिनोंदिन निरुपाधि प्रेम और प्रतिज्ञाको निभाना, श्रीसीताराम और लक्ष्मणके वियोगकी व्यथाको सहन करना, लोक और परलोकके सुखोंसे उदासीन रहते हुए केवल श्रीरामके चरणकमलोंका ही चिन्तन करना—ये एक-एक आचरण मन और वाणीकी पहुँचसे परे हैं। पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराजने प्रेमसमाधिके कुछ लक्षणोंके भी संकेत सूत्ररूपमें प्रदान किये हैं, जो इस प्रकार हैं—

(१) प्रेमको देखना, प्रेमको सुनना, प्रेमको स्पर्श करना, प्रेमको ही सूँघना तथा प्रेमका ही जिह्वासे रस लेना, (२) प्रेमभरे ही शयन करना और प्रेमभरे ही जागना, (३) मन प्रेमास्पदके नाम, रूप, लीला, धामके चिन्तन एवं रसास्वादमें लगा रहे, (४) बुद्धि पूर्णतम, परब्रह्म साकेतविहारी-विहारिणीजूका विचार एवं निश्चय करे, (५) इन्द्रिय-समूह और शरीरसे प्रेमयुक्त कैंकर्य करे। कैंकर्य भी भावपरायण, आनन्दपूर्वक तथा प्रभुके सुखके लिये करे, (६) प्रभुप्रेमीको छोड़कर अन्यसे भेंट न हो, (७) प्राय: भावसमाधिमें भावकी अत्यन्त घनता होनेपर प्रेमी, प्रेमास्पद तथा प्रेम एक हो जाते हैं। इस प्रेमके मधुर आसवका स्वाद कैसा है—

आनँद आनँद आया रे, मैं तो प्रेमका आसव पाया रे।
जित देखौं तित श्याम दिखावत, नयनन नेह समाया रे॥
चाह चमारिन चिन्ता साँपिनि, छुअत न हमरी काया रे।
शोक मोह भ्रम संसय नशिगे, पागलपन तन छाया रे॥
विधि निषेध श्रुतियन मर्यादा, लोक रीति जो गाया रे।
मोहि ते शासन लिये उठाई, बावल जानि अमाया रे॥
मैं अरु मोर भूलिगे सिंगरे, भव रस स्वप्न न भाया रे।
'हर्षण' हृदय बस्यो सोइ आई, जेहि ने पेय पिलाया रे॥

भगवान्‌के अनन्य भक्तोंकी अभिलाषा

(पं० श्रीकिशनजी महाराज 'कृष्णानन्दोपाध्याय')

अकारणकरुण करुणावरुणालय भगवान् श्रीहरिके अनन्य भक्तवृन्दकी सद् अभिलाषा यह रहती है कि हे भगवन्! हमें इन्द्र-कुबेरादिके लोक एवं तत्-तत् लोकोंका आधिपत्य, लोकपालत्व, दिक्पालत्वादि पद-प्रतिष्ठा नहीं चाहिये। हमें तो आपके चरणारविन्दोंके मकरन्दके रसास्वादनके निमित्त सत्संग एवं तत् सत्संगजन्य भक्तिके अवसरकी आवश्यकता है, जो सर्वानर्थनिवृत्तिका हेतु है। गोस्वामीजीके शब्दोंमें भक्तशिरोमणि भरतका उदाहरण द्रष्टव्य है—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

भागवतोक्त वृत्रासुरोपाख्यानमें भगवच्चरणार-विन्दानुरागी वृत्रासुर अपनी अन्तिम अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहता है—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥

अर्थात् हे सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डलके साम्राज्यका एकछत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि मोक्ष भी नहीं चाहता। वह आगे कहता है—जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माताकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही हे कमलनयन! मेरा मन आपके दर्शनके लिये छटपटा रहा है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेष व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

कृष्णभक्तशिरोमणि सूरदासजी अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुए कहते हैं—हे प्रभो! मुझे आप अपनी भक्ति दीजिये। आप मुझे करोड़ों प्रकारके लालच दिखाते हैं, परंतु वे मुझे एक भी नहीं भाते हैं—

अपनी भगति दे भगवान।
कोटि लालच जो दिखावहु, नाहिनै रुचि आन॥

निर्गुण भक्त कबीरदासजी कहते हैं कि मेरा मन तो फकीरीमें ही लगा रहता है; क्योंकि जो सुख नाम-भजनमें है, वह अमीरीमें कहाँ है?

मन लागो मेरो यार फकीरी में।
जो सुख पावों नाम-भजन में सो सुख नाहिं अमीरी में॥

भक्तिमती मीराजी अपने लौकिक पति राणाजीको सम्बोधित करते हुए कहती हैं—राणाजी! मैं तो गोविन्दके गुण गाती हूँ, मेरा चरणामृतपानका नियम है, मैं नित्य उठकर उनके दर्शन करने जाती हूँ और घुँघुरू बाँधकर हरिमन्दिरमें नृत्य करती हूँ—

राणाजी म्हे तो गोविंद का गुण गास्याँ।
चरणाम्रित को नेम हमारे, नित उठ दरसण जास्याँ॥
हरिमंदिर में निरत करास्याँ घूघरिया धमकास्याँ।

श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी कहते हैं—हे माँ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी भी अभिलाषा नहीं है, न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकांक्षा, अतः आपसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते—

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥

भागवतोंके परमधन, ध्येय एवं गेय श्रीभगवान् ही होते हैं। भगवद्भक्तोंकी अभिलाषा यही रहती है कि पाषाण भी बन जाऊँ तो उसी गोवर्धनका, जिसे श्रीकृष्णने धारण किया अथवा धेनु भी बनूँ तो नन्द गोपकी, जिससे गोपाल कृष्णका परम सान्निध्य प्राप्त हो। रसिक कवि रसखानने यही भाव गुंफित किये हैं, इस सवैयामें—

मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौं नित नन्दकी धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरिकौ, जो धर्‍यौ कर छत्र पुरन्दर-धारन।
जो खग हौं तौ बसेरो करौं मिलि, कालिन्दी-कूल-कदम्ब की डारन॥

इस प्रकार भगवान्‌के अनन्य भक्तोंकी अभिलाषा भगवान्‌को ही पानेकी होती है, लौकिक आकर्षण और भौतिक चाकचिक्यका उनकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं होता, वे लोकमें रहते हुए भी जल कमलवत् ही रहते हैं और भगवत्कृपारूपी सूर्यके प्रकाशमें ही विलसित होते हैं।

प्रारब्ध और कर्मस्वातन्त्र्य

(श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र')

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

(गीता १८। ६१)

अर्जुन! ईश्वर समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहता है। यन्त्रपर चढ़ेके समान सब प्राणियोंको वह अपनी मायासे घुमाता रहता है।

नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस बेद अस गावत॥

(रा०च०मा० ४। ६। २४)

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति॥

(गीता ३। ३३)

'प्राणी अपने स्वभावके अनुसार ही व्यवहार करते हैं। इसमें निग्रह क्या करेगा!'

एक ओर ऐसी बातें हैं, जो कम नहीं हैं। इनका समर्थन ही प्रारब्धवाद करता है। फल होगा कोई तो किसी-न-किसी क्रियाके माध्यमसे होगा। जब वह फल होना ही है, तो क्रिया भी वहीं होगी। किसीको लाठीसे चोट खाना है और अमुकके हाथसे खाना है तो लाठी चलानेमें वह अमुक स्वतन्त्र कहाँ है?

इसीके साथ फलित ज्योतिषको और रख लीजिये। बच्चेके उत्पन्न होते ही उसकी कुण्डली बनती है। उस कुण्डलीमें बतलाया गया है कि बच्चा धार्मिक होगा या अधार्मिक, सदाचारी होगा या कदाचारी। अब बच्चेके लिये धार्मिक जीवन व्यतीत करनेकी स्वतन्त्रता कहाँ है?

इसके विपरीत दूसरी ओरसे इस प्रश्नको देखें तो बात दूसरी ही दिखलायी पड़ती है। इतने धर्मशास्त्र और अध्यात्म-शास्त्र कर्ताके लिये ही तो हैं। यदि कर्ता कर्म करनेमें समर्थ न हो तो 'यह करो और यह मत करो' इस आज्ञाका क्या अर्थ? शास्त्र तो सब विधि-निषेधसे भरे पड़े हैं। विधि-निषेधका विधान स्वतन्त्र कर्ताके लिये ही होता है।

यदि कर्ता स्वतन्त्र नहीं है और उससे कोई दूसरा बलपूर्वक शुभ या अशुभ कर्म करा लेता है तो वह पुरस्कार या दण्डका पात्र हो कैसे सकता है? शास्त्र तो मनुष्यको पाप-पुण्यका कर्ता और उनके फलका भोक्ता मानता है। इसका अर्थ ही है कि मनुष्य नवीन पाप-पुण्यरूप कर्म करनेमें स्वतन्त्र है—**'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** (गीता २। ४७)।

कर्म करनेमें ही तुम्हारा अधिकार है। भले फलमें अधिकार न हो, कर्म करनेमें तो अधिकार है ही। मनुष्ययोनि कर्मयोनि है। इसका अर्थ ही यह है कि मनुष्यको कर्म करनेमें स्वतन्त्रता प्राप्त है।

अब यहाँ प्रश्न आता है कि बात क्या है? ईश्वर सबको अपने इच्छानुसार चलाता है, सब अपनी प्रकृतिके परतन्त्र हैं, प्रारब्धानुसार व्यक्तिका जीवन बनता है और जन्मकुण्डली प्रारब्धकी सूचक है, इन बातोंके साथ मनुष्य कर्म करनेमें स्वतन्त्र है, इस बातका क्या मेल है? क्या समन्वय है इसका? हमारी स्वतन्त्रताकी सीमा क्या है और कहाँ पहुँचकर हम परतन्त्र हो जाते हैं?

इन दोनों तथ्योंमें समन्वय है और उस समन्वयको हृदयंगम कर लेनेपर कर्म-सिद्धान्तके सम्बन्धमें कहीं कोई शंका नहीं रह जाती।

नेत्रके देवता सूर्य हैं। सूर्यके (चन्द्रमा, विद्युत्, अग्निकी ज्योति भी घूम-फिरकर सूर्य-ज्योति ही है) प्रकाशमें, सूर्यकी शक्तिसे नेत्र रूपको देखते हैं। अतः कहना यही उचित है कि सूर्यकी प्रेरणासे ही सब कुछ देखा जाता है; किंतु सूर्य केवल नेत्रको सत्ता एवं शक्ति देनेवाला है। आप कहीं कुदृष्टि डालें अथवा स्नेहपूर्ण शुभ दृष्टि, यह आपपर निर्भर है। इसमें आप स्वतन्त्र हैं। बिजलीकी शक्ति 'शक्तिभवन' (Power House)-से ही आती है। वह शक्ति (Current) न हो तो कुछ भी कार्य नहीं हो सकता। उसके बिना आप सर्वथा असमर्थ हैं। पर उस शक्तिके द्वारा आप रोशनी कर सकते हैं, पंखा चला सकते हैं, मिल-मशीन चला सकते हैं, किसीका रोग-नाश कर सकते हैं, स्वयं जल सकते हैं, दूसरोंको जला सकते हैं। इस सदुपयोग-दुरुपयोगमें आप स्वतन्त्र हैं, पर फल तो उस कर्मके अनुसार भोगना ही पड़ेगा। इसी प्रकार अन्तर्यामी परमात्मा सबके हृदयमें

रहकर सबको सत्तास्फूर्ति देता है; किंतु वह निर्विशेष है। वह आपको पाप या पुण्यमें नहीं लगाता। आपको सत्ता-स्फूर्ति देना उसका कार्य है और उस सत्ता-स्फूर्तिको किधर लगाना, इसमें आप स्वतन्त्र हैं।

हमारे बहुत कम ऐसे कार्य हैं, जिनसे सृष्टिमें कोई महत्त्वपूर्ण उथल-पुथल होती है। सृष्टिका जो कर्ता, पालक, नियन्ता है, वही जानता है कि सृष्टि कैसे चलेगी। अत: सृष्टिमें जिन कार्योंसे महत्त्वपूर्ण उथल-पुथल हो सकती है, उस कार्यको करनेमें तो कोई स्वतन्त्र नहीं है। किसीमें उसे करनेकी शक्ति हो तो भी सृष्टिका नियन्ता उसे मनमानी नहीं करने देगा। लेकिन सामान्य कार्योंमें हमारे दैनिक शुभाशुभ कर्मोंमें हमें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। जैसे माताके सामने उसके छोटे बच्चे खेलते हैं, माता उन्हें धूल-कीचड़में भी खेलने देती है, अपने खेलमें एक बड़ी सीमातक वे स्वतन्त्र हैं, किंतु घरमें मनमानी तोड़-फोड़ और परस्पर एक-दूसरेका सिर फोड़नेमें वे स्वतन्त्र नहीं हैं। इसी प्रकार सृष्टिका सम्पूर्ण नियन्त्रण ईश्वरके हाथमें है, किंतु मनुष्यको बहुत बड़ी सीमातक शुभाशुभ कर्म करनेकी स्वतन्त्रता है। केवल सृष्टिमें बड़ी उथल-पुथल करनेमें वह स्वतन्त्र नहीं है। ऐसा कुछ होता है तो उसमें जो लगते हैं, वे उस अन्तर्यामीके लगनेसे ही लगते हैं। उस समय वे वैसा न करनेमें स्वतन्त्र नहीं होते।

अब प्रकृतिकी परतन्त्रता कहाँतक है, यह भी देख लेना चाहिये। प्रकृतिका अर्थ है—स्वभाव। यह दो प्रकारका होता है—एक जन्मजात और दूसरा अभ्यासज। स्वभाव जन्मजात हो या अभ्यासज, दोनों बदल सकते हैं, किंतु उनको बदलनेके लिये दृढ़ प्रयत्न और पर्याप्त लम्बा समय चाहिये। सामान्यरूपमें कोई परिस्थिति आनेपर व्यक्ति स्वभावके अनुसार ही व्यवहार करता है।

महर्षि दुर्वासाने भी कई बार अपराध क्षमा किया, किंतु तब, जब बहुत सावधानचित्त थे। उनकी आदत क्रुद्ध होकर शाप देनेकी है। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्तिकी कुछ आदत होती है। उसीके अनुसार वह परिस्थिति आनेपर व्यवहार करेगा। दीर्घकालीन अभ्याससे वह बदल सकती है। इसलिये आदतके अनुसार ही कर्म करनेमें हम परतन्त्र हैं, ऐसा कहा नहीं जा सकता। आपकी आदत पड़ गयी है शराब पीनेकी, सिगरेट पीनेकी तो यह आदत कैसे पड़ी? आपने ही तो इसको बनाया। अत: आप इसे बनाने-बिगाड़नेमें स्वतन्त्र हैं। इसके अनुसार जो कर्म होता है, उसका दायित्व आपका ही है।

ऐसा भी तो नहीं है कि हम सभी काम आदतके वश ही करते हों। जीवनके बहुत-से काम हम सोच-समझकर योजना बनाकर करते हैं। इनको करनेमें, न करनेमें तो हम सर्वथा स्वतन्त्र होते हैं। आदतको बदलनेके प्रयत्नमें भी हम स्वतन्त्र ही हैं।

ईश्वरकी परतन्त्रता सामान्य व्यक्तिके लिये सामान्य कार्योंमें कुछ नहीं है। व्यक्ति-विशेषके लिये, बहुत अधिक साधन-शक्ति रखनेवालोंके लिये, उनके ऐसे कार्योंमें जिनसे सृष्टिमें कोई बड़ी उथल-पुथल होती हो, अवश्य ईश्वरकी परतन्त्रता है। स्वभावकी जो परतन्त्रता जीवनमें है, वह हमारे अभ्यासकी बनायी है और उसके कारण हुए किसी कर्मके दायित्वसे हम बचते नहीं हैं। इन दोनोंकी अपेक्षा प्रारब्धकी परतन्त्रता कहीं अधिक है।

जीवनमें हम जो कुछ करते हैं, उसमें दो प्रकारके कर्म होते हैं। एक वे जो बाह्य जगत्‌में कोई स्थूल परिणाम नहीं उत्पन्न करते और दूसरे वे जो जगत्‌में स्थूल परिणाम उत्पन्न करते हैं। इनमें-से पहली कोटिके कर्मोंका तो प्रारब्धसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इन्हें करने, न करनेमें हम पूर्णत: स्वतन्त्र हैं। जैसे किसीके प्रति दुर्भावना करनेसे उसका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, इस प्रकारके मानसिक कर्म हमें केवल अपवित्र ही करते हैं और वे शुभ हुए तो पवित्र करते हैं।

जो कर्म स्थूल परिणाम उत्पन्न करते हैं, वे भी सदा सफल नहीं होते। जैसे कोई चोर चोरी करने गया। उसने खिड़की तोड़ी, घरमें तिजोरी तोड़ी, किंतु लोग जग गये। बिना कुछ लिये भागना पड़ा। किसीने आपको लाठी मारी, किंतु आपको लगी नहीं। यहाँ कर्ताको प्रेरणा देकर बाध्य करनेवाला कोई प्रारब्ध नहीं था। कर्ता अपनी दुर्भावनावश ही कर्ममें प्रवृत्त हुआ। वह ऐसा न करनेमें भी स्वतन्त्र था।

स्थूल परिणाम जहाँ उत्पन्न हो गया, वहाँ भी कर्म नवीन हुआ या प्रारब्ध-प्रेरित हुआ, यह जाननेका कोई उपाय नहीं है। आपने किसीको लाठी मारी और उसका

सिर फूट गया। उसका सिर तो उसके प्रारब्धसे फूटा, किंतु वह दूसरे प्रकार भी तो फूट सकता था। लाठी मारनेका काम आप करते ही, यह अनिवार्य तो नहीं था। यह आपके हाथसे ही होना था तो यह भी तो हो सकता था कि आपके अनजानमें आपके हाथकी लाठी उसके सिरपर गिर जाती, आप वृक्षपर दातून तोड़नेको लाठी चलाते और उसे लग जाती। अतः जान-बूझकर लाठी चलाने न चलानेमें आप स्वतन्त्र थे। इनमें प्रारब्धने आपको परवश नहीं किया। इस कर्मके उत्तरदायी आप ही हैं।

मनुष्यके कर्म-स्वातन्त्र्यका विचार करते समय गीताके इन श्लोकोंपर ध्यान अवश्य दिया जाना चाहिये—

अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्॥
शरीरवाङ्मनोभिर्यत् कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पञ्चैते तस्य हेतवः॥
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः॥

(गीता १८। १४—१६)

१-अधिष्ठान (परमात्मा), २-कर्ता (व्यक्ति), ३-नाना प्रकारके उपकरण, ४-अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ और इनमें ५-प्रारब्ध—ये पाँचों मिलकर उन सब कर्मोंमें कारण होते हैं, जिन्हें मनुष्य शरीरसे, वाणीसे या मनसे प्रारम्भ करता है। वे शुभ हों या अशुभ, इसमें जो केवल अपनेको ही कर्ता मानता है, वह अकृतबुद्धि (विचारहीन) होनेसे दुर्मति है। यह ठीक नहीं समझता।

'कर्मण्येवाधिकारस्ते' (गीता २। ४७) अर्थात् 'कर्म करनेमें मनुष्यका अधिकार है'—किंतु कहाँतक? मानसिक कर्म तथा वाणीसे बोलनेमें भी उसका अकेला कर्तृत्व नहीं है। इसमें भी पाँच-पाँच कारण हैं। इन पाँचमेंसे एक वह है।

हम जो कर्म अनजानेमें करते हैं, उनका फल पाप या पुण्य हमें नहीं होता। जैसे सोते समय हाथ लगकर मच्छर मर गया या ठीक देखकर चलनेपर भी पैरसे कोई चींटी दब गयी तो इसका दोष हमें नहीं होता। इसका अर्थ है कि अहंकारपूर्वक—कर्तृत्वपूर्वक किये कर्मका ही पाप-पुण्य कर्ताको होता है। यह कर्तृत्व स्थापित करनेमें हम स्वतन्त्र हैं और यही सबसे बड़ा कर्म-स्वातन्त्र्य मनुष्यका है। यही सब अनर्थोंका हेतु भी है—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान् न हन्ति न निबध्यते॥

(गीता १८। १७)

'मैं कर रहा हूँ'—यह भाव कर्म करते समय जिसका नहीं रहता और कर्म हो जानेपर जिसकी बुद्धि 'मैंने किया'—इस प्रकार लिप्त होकर ऊहापोहमें नहीं पड़ती, वह मारकर भी न किसीको मारता, न कर्म-बन्धनमें पड़ता है।

भगवान् रुद्र प्रलय करते हैं। सृष्टिके सब प्राणी, लाख-लाख गायें और ब्राह्मण, साधक-सिद्ध सब मरते हैं, किंतु उन प्रलयंकरको क्या कोई पाप लगता है? उन्हें कर्मबन्धन होता है?

भगवान् सबके हृदयमें हैं और सामान्य रूपमें सबका नियन्त्रण करते हैं, किंतु जो अपनेको उनपर ही छोड़ देता है, अपनेको सर्वथा उनके हाथका यन्त्र बना देता है, उसका पूरा संचालन फिर वही करते हैं। उसका अपना अहंकार तो चला ही गया। अतः जब वह कर्म करनेमें अपनेको स्वतन्त्र ही नहीं देखता तो उसके लिये न विधि-निषेध है और न उसे कर्म-बन्धन प्राप्त होता है। वह अपने देहसे हुए शुभाशुभ कर्मोंका उत्तरदायी नहीं रह जाता। पर ऐसी परिस्थितिमें अहंकार-प्रसूत कामना-आसक्ति न रहनेके कारण उससे अवैध कर्म बन नहीं सकते। लेकिन जबतक सचमुच चित्त ऐसा अहंता-ममताशून्य नहीं बन जाता, मनुष्यको सदा शुभमें ही लगनेका पूरा प्रयत्न करना चाहिये और अपनेको इसमें पूर्ण स्वतन्त्र मानकर ही परमार्थ-साधनमें भी जुटे रहना चाहिये।

सच बात तो यह है कि मनुष्य अर्थ, धर्म, काम (भोग)-के क्षेत्रमें परतन्त्र ही है, किंतु अज्ञानवश इन्हीं क्षेत्रोंमें प्रयत्न करनेमें लगा है। मनुष्य स्वतन्त्र है मोक्षके क्षेत्रमें। अन्तर्मुख होने—पारलौकिक साधनमें। इसका जगत्पर प्रभाव नहीं पड़ता। यही मनुष्यकी स्वतन्त्रताका क्षेत्र है। यही मनुष्यकी स्वतन्त्रता है और इसीमें लगना मनुष्यत्वकी सफलता है।

संतचरित—

नामानुरागी संत श्रीउड़ियाबाबाजी

श्रीचैतन्यमहाप्रभुके समसामयिक उत्कल-नरेश महाराज प्रतापरुद्रके राजपुरोहित श्रीकाशी मिश्रके वंशमें ही उत्पन्न हुए थे श्रीवैद्यनाथ मिश्र। कालक्रमसे यह वैष्णवकुल शक्तिका उपासक हो गया था। भाद्र कृष्ण अष्टमीके दोपहरको श्रीवैद्यनाथ मिश्रकी पत्नी श्रीमती लक्ष्मीदेवीके प्रथम पुत्र हुआ। बालकके जन्मके तीसरे ही दिन माता परलोकगामिनी हो गयीं। इस बालकका नाम पिताने आर्तत्राण मिश्र रखा। यह बालक अत्यन्त कृश, रोगी तथा अद्भुत शान्त प्रकृतिका था। जहाँ बैठा दिया, बैठा रहा। किसीने पीट दिया तो चुपचाप पिट लिया। नेत्र प्राय: अधमुँदे बने रहते।

चार वर्षके होनेपर यज्ञोपवीत हुआ और बारह वर्षकी अवस्थातक घरपर ही शिक्षा चलती रही। इसके बाद एक लड़केके साथ चुपचाप ये घरसे निकले और मयूरभंज पहुँच गये। वहाँकी पाठशालाके शिक्षक इस बालकके पिताके परिचित थे; अत: वहाँ अधिक दिन न टिककर बालक बाल्याबेड़ा आ गया। पाँच वर्षोंतक यहाँ राजाकी पाठशालामें अध्ययन करके काव्यतीर्थ परीक्षामें उत्तीर्ण हो गया। इस बीचमें घरके लोगोंसे एक बार मिल भी आया।

महापुरुषोंका जन्म ही अनेक जन्मोंकी साधना-परम्पराको लेकर होता है। उन्हें तो केवल कोई सामान्य निमित्त चाहिये अपने जन्म-जन्मके साधन-पथपर लग जानेके लिये। आर्तत्राण मिश्र जब काव्यतीर्थके अन्तिम खण्डकी तैयारीमें लगे हुए थे, तब स्थानीय मन्दिरके उत्सवमें एक नाटक-मण्डलीमें श्रीकृष्णचन्द्रके गोचारण तथा गोपकुमारोंके साथ वनभोजन-लीलाका अभिनय किया। इस लीलाभिनयका इतना प्रभाव पड़ा इन युवक छात्रपर कि अपनी कोठरीमें आकर उसी श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन करते हुए ये शरीरका भान ही भूल गये। तीन दिन-रात यह भाव-समाधि अखण्ड रही। सहपाठियोंने इस प्रकार बिना खाये-पीये मूर्छितप्राय बैठे रहनेको रोग ही समझा तो क्या आश्चर्य!

इसी कालमें पाठशालाके एक अत्यन्त प्रिय सहाध्यायीकी हैजेसे मृत्यु हो गयी। इस अवसरपर आर्तत्राण मिश्रको पूरा संसार ही नाशवान् दीखने लगा। उनके चित्तमें यहींसे वैराग्यका अंकुर उठा। शिक्षा समाप्त करके ये घर लौटे तथा कुछ दिन पैतृक वृत्ति करते भी रहे; किंतु अचानक उड़ीसामें भयंकर अकाल पड़ा। लोग भूखसे इधर-उधर भटकते घूमने लगे। दाने-दानेको तरसकर लोग मरने लगे। इस दृश्यसे आर्तत्राणजीका कोमल चित्त काँप गया। इन्होंने 'द्रौपदीकी बटलोई' की भाँति कोई अन्न देनेवाला अक्षय पात्र पानेके लिये अनुष्ठान करनेका निश्चय किया और घरसे निकल पड़े।

कुछ दिनोंमें कलकत्ता होते हुए गौहाटी पहुँचे। वहाँ एक तान्त्रिक सज्जन मिल गये। उनकी सम्मतिसे वनदुर्गाका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। अनुष्ठान ठीक चल रहा था। स्वप्नमें देवीने दर्शन भी दिया, किंतु तभी एक महात्मासे विवेकचूड़ामणि सुननेको मिला। मनमें विचार उठा—'देवीने एक पात्र दे भी दिया तो क्या होगा? मेरे पास अन्न लेने संसारके सब लोग तो आ नहीं सकते। मैं ही कहाँ सबको अन्न देनेके लिये अमर रहनेवाला हूँ। फिर अन्न पाकर ही तो प्राणी दु:खहीन नहीं हो जायँगे।'—इन विकल्पोंके कारण आपने अनुष्ठान छोड़

दिया और काशी आ गये। काशीमें थोड़े ही दिन रुके। वहाँसे वैद्यनाथधाम होते हुए घर लौट गये।

इस समयतक आयु बीस वर्षसे कुछ अधिक हो चुकी थी। एक प्रसिद्ध ज्योतिषीने इनकी आयु बत्तीस वर्ष बतायी थी, अत: घरवालोंने इनका विवाह नहीं किया। घरसे आप श्रीजगन्नाथपुरी आये और वहाँ गोवर्धनपीठके जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमधुसूदनतीर्थसे आपने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यकी दीक्षा ली। उस समय आपका नाम ब्रह्मचारी चेतनानन्द हो गया।

अब इन ब्रह्मचारीजीको सिद्ध गुरु ढूँढ़नेकी धुन चढ़ी। मठ छोड़कर अनेक स्थानोंमें घूमते-घामते ये बड़पेटा पहुँचे। यहाँ एक शिवमन्दिरके वृद्ध महन्तने मरते-मरते इनको अपना उत्तराधिकारी बना दिया। किंतु महन्त होकर मायामें लिप्त होनेके बदले ये अनुष्ठानमें लग गये। शतचण्डीका अनुष्ठान करनेसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हुई और साथ ही 'परचित्त-ज्ञान' की शक्ति जागी। किंतु इस सिद्धिने बड़ा विक्षेप दिया मनको। अठारह दिनमें ही घबरा गये—जो आये, उसीके चित्तके दोष दीखें। प्रभुसे प्रार्थना की और तब यह सिद्धि निवृत्त हुई।

जहाँके महन्त थे, वहाँका एक अन्य उत्तराधिकारी तीर्थयात्रासे लौटा। उसे महन्ती चाहिये थी और जनता इन्हें छोड़ती नहीं थी। अत: वहाँसे ये चुपचाप चल पड़े। इसके बाद तीर्थाटन करते रहे और फिर सं० १९६४ वि० में कार्तिकी पूर्णिमाको जगन्नाथपुरीमें अपने ब्रह्मचर्याश्रमके गुरुसे ही आपने संन्यासकी दीक्षा ली। अब आपका नाम स्वामी पूर्णानन्दतीर्थ हो गया। किंतु विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त होनेपर लोग आपको श्रीउड़ियाबाबाजी ही कहने लगे। संन्यासके कुछ दिन पश्चात् ही आपने दण्डको समुद्रमें विसर्जित कर दिया।

पुरीसे काशी आते समय भूलसे गाड़ी नहीं बदल सके और छपरा पहुँच गये। वहाँ टिकट-चेकरने आपको अपमानित किया। तभीसे किसी भी सवारीमें न बैठनेका आपने नियम बना लिया। यह नियम आपका जीवनके अन्तिम वर्षमें टूटा और वह भी प्रेम-परवशताके कारण।

आपने बहुत दिनोंतक अत्यन्त विरक्त तथा कठोर साधनामय जीवन व्यतीत किया। पैदल चलते, वृक्षके नीचे पड़े रहते। तीव्र जिज्ञासा चित्तमें थी। कई-कई दिन निराहार रह जाते। चित्तमें उपरति थी। तीर्थाटन, सत्संग तथा चिन्तन—वर्षोंतक यह चलता रहा। इसी यात्राक्रममें आप रामघाट गंगातटपर पहुँच गये। आपका सबसे अधिक निवास उसके बाद अनूपशहरसे रामघाटतक गंगातटपर ही हुआ। इसमें भी रामघाट तथा कर्णवास ही निवासके मुख्य स्थान रहे। दस वर्षोंतक यहाँ आपने कठोर तप तथा एकान्त साधनामय जीवन व्यतीत किया। उसके बाद प्रेमी भक्तोंका समुदाय जंगल-झाड़ियोंमें भी आपके पास पहुँचने लगा।

सं० १९९४ वि० में श्रीउड़ियाबाबाजीके वृन्दावन-आश्रमकी प्रतिष्ठाका उत्सव हुआ था। इससे पूर्व भी वे वृन्दावन आ चुके थे और यहाँके मुख्य सन्तोंसे उनका साक्षात्कार हुआ था; किंतु आश्रम बन जानेपर अधिक समय आप वृन्दावनमें ही रहने लगे। इससे पूर्वसे ही श्रीहरिबाबाजीसे घनिष्ठता हो गयी थी और हरिबाबाजीके बाँधपर आप प्राय: पधारते थे। श्रीहरिबाबाजीने भी श्रीवृन्दावन-आश्रममें आपके सान्निध्यमें रहना प्रारम्भ कर दिया।

उस समय जितने भी प्रख्यात संत थे, वे चाहे किसी भी सम्प्रदायके रहे हों, सबसे श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजका प्रेम था। सभी आपका सम्मान करते थे और सबका उचित सत्कार आपके द्वारा होता था। वृन्दावनका आश्रम हो या कर्णवास अथवा राजघाट—श्रीउड़ियाबाबाजीके यहाँ उन्मुक्तरूपसे आनेवालोंको भोजन कराया जाता था। बाबा स्वयं लोगोंको खिलानेमें जुटे रहते थे। वे कहा करते थे—'खानेका आनन्द जीवका आनन्द है और खिलानेका आनन्द ईश्वरका आनन्द है।'

लोगोंकी विवेकरहित श्रद्धा तथा अविचारित आग्रह सन्तोंको बहुत तंग करता है। लोग अपने इच्छानुसार उन्हें खिलाना—रखना चाहते हैं। श्रीमहाराजजी अत्यन्त उदार थे और किसीको भी दुखी, निराश नहीं देख सकते थे। इसका फल यह हुआ कि खाने-पीने तथा विश्रामका

कोई नियम ही नहीं रह गया। एक-एक दिन बहुत सारे लोगोंके यहाँ मुख जूठा करना पड़ता। निद्राके लिये तो कोई समय ही नहीं रह गया था। प्राय: बैठे-बैठे ही झपकी ले लेते थे। शरीर रोगी हो गया। इतनेपर भी वर्षोंतक बिना रात्रि-विश्रामके, सबके श्रद्धाग्रहको सन्तुष्ट रखते, जो जीवनचर्या चली, वह किसी भी सामान्य पुरुषके वशकी बात नहीं थी।

वह सं० २००४ वि० का सोमवार था। चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तिथि थी। श्रीहरिबाबाजी महाराज झूसी चले गये थे। मध्याह्नोत्तर सत्संग चल रहा था। श्रीमहाराजजी प्रतिदिनकी भाँति ध्यानस्थ बैठे थे। आश्रमके ही एक अर्धविक्षिप्त व्यक्तिने पीछेसे उनके मस्तकपर तीन वार गँड़ासेके किये। लीला-सम्वरणका यह एक बहानामात्र था; क्योंकि संकेतसे श्रीउड़ियाबाबाजीने कई लोगोंको अपने प्रस्थानकी सूचना पहले दे दी थी।

देहसे ऊपर उठे एक आत्मनिष्ठ संतकी स्थिति उस दिन लोगोंने देखी। मस्तकपर गँड़ासेकी तीन चोटें पड़ीं। चार इंच गहरा घाव। पहली चोटके पश्चात् धीरेसे हाथ मस्तककी ओर गया तो अँगुलियाँ कट गयीं। इतनेपर भी न चीख-पुकार, न छटपटाहट। तनिक होश आया तो पूछा—'क्या हो रहा है?' जैसे उनके अपने शरीरपर नहीं, कहीं और ही आघात लगा हो। फिर नेत्र बन्द हुए और पुन: कहाँ खुलने थे। शरीरको सन्तोंने यमुनाजीमें विसर्जित किया।

श्रीउड़ियाबाबाजी महाराजके समीप दो प्रकारके भक्तोंका समुदाय रहता था—एक ज्ञानपर निष्ठा रखनेवालोंका और दूसरा सगुणोपासकोंका। दोनों प्रकारके लोगोंके लिये ये पृथक्-पृथक् सत्संग कराते थे। ज्ञाननिष्ठ लोग पूछते—'आप इन भजन करनेवालोंको तत्त्वज्ञानका उपदेश क्यों नहीं करते?'

इसका उत्तर मिलता—'इन लोगोंमें ऐसी निर्मल बुद्धि नहीं है।' सचमुच ज्ञानका अधिकारी तो अत्यन्त वैराग्यवान् बुद्धिप्रधान साधक ही है।

'आप इन लोगोंको भगवद्भक्तिमें क्यों नहीं लगाते?' भक्तोंका समुदाय भी बाबासे पूछता था।

बाबा कहते थे—'इन सबोंमें श्रद्धा तो है ही नहीं।' सच्ची बात, श्रद्धा-विश्वासके बिना भक्तिदेवीके श्रीमन्दिरमें प्रवेशका अधिकार नहीं मिलता।

बाबा भक्त-समुदायको प्रधानतया नाम-जप करनेका उपदेश करते थे—'भगवन्नाम जपो! जीभसे नाम, हाथसे काम। बिना नामके जिह्वाको एक क्षण भी खाली मत रहने दो।'

आश्रममें 'अखण्ड कीर्तन' तो प्राय: होता ही रहता था। प्रतिदिन प्रात: तथा सायंकाल संकीर्तन होता था और मध्याह्नोत्तर सत्संगमें भी पहले नाम-कीर्तन ही किया जाता था। बाबाने अपनी उपस्थिति तथा प्रेरणासे व्यापक क्षेत्रमें भगवन्नामका प्रचार किया। अनेक लोगोंको आपने नाम-जपमें लगाया।

सन्तवाणी

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

अपनी बुराई देखनेका ज्ञान अपनेमें है, पर असावधानीके कारण उसका उपयोग हम दूसरोंकी बुराई देखनेमें करते रहते हैं, जिसका बहुत बड़ा भाग अपनी कल्पना ही होती है, वास्तविक नहीं। वास्तविक बुराईका ज्ञान तो अपने सम्बन्धमें ही सम्भव है और उसीसे साधक सदाके लिये बुराईरहित होकर सभीके लिये उपयोगी हो जाता है।

बुराईरहित होना सत्संगसे साध्य है और भला हो जाना दैवी विधान है। भलाई सीखी नहीं जाती, सिखायी नहीं जाती। बुराईरहित होनेसे भलाई स्वत: अभिव्यक्त होती है। बुराईरहित होनेसे भलाई व्यापक होती है।

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क ७ पृ०-सं० २७ से आगे]

(१०) श्रीनागेश्वर

श्रीनागेश्वर भगवान्‌का स्थान गोमती-द्वारकासे वेट-द्वारकाको जाते समय लगभग १२-१३ मील पूर्वोत्तर मार्गपर है।* इस लिंगकी स्थापनाके सम्बन्धमें शिवपुराणकी कथा है कि प्राचीन कालमें दारुका नामकी एक राक्षसी थी, जो पार्वतीके वरदानसे सदा घमण्डमें भरी रहती थी। अत्यन्त बलवान् राक्षस दारुक उसका पति था। उसने बहुत-से राक्षसोंको लेकर वहाँ सत्पुरुषोंका संहार मचा रखा था। वह लोगोंके यज्ञ और धर्मका नाश करता फिरता था। पश्चिम समुद्रके तटपर उसका एक वन था, जो सम्पूर्ण समृद्धियोंसे भरा रहता था। उस वनका विस्तार सब ओरसे सोलह योजन था। दारुका अपने विलासके लिये जहाँ जाती थी, वहीं भूमि, वृक्ष तथा अन्य सब उपकरणोंसे युक्त वह वन भी चला जाता था। देवी पार्वतीने उस वनकी देख-रेखका भार दारुकाको सौंप दिया था। राक्षस दारुक अपनी पत्नी दारुकाके साथ वहाँ रहकर सबको भय देता था। उससे पीड़ित हुई प्रजाने महर्षि और्वकी शरणमें जाकर उनको अपना दुःख सुनाया। और्वने शरणागतोंकी रक्षाके लिये राक्षसोंको यह शाप दे दिया कि 'ये राक्षस यदि पृथिवीपर प्राणियोंकी हिंसा या यज्ञोंका विध्वंस करेंगे तो उसी समय अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेंगे।'

इधर देवताओंने जब यह बात सुनी, तब उन्होंने दुराचारी राक्षसोंपर चढ़ाई कर दी। राक्षस बहुत घबराये। यदि वे लड़ाईमें देवताओंको मारते तो मुनिके शापसे स्वयं भी मर जाते और नहीं मारते तो पराजित होकर भूखों मर जाते। इस अवस्थामें दारुकाने कहा—'भवानीके वरदानसे मैं इस सारे वनको जहाँ चाहूँ, ले जा सकती हूँ।' यों कहकर वह समस्त वनको ज्यों-का-त्यों लेकर समुद्रमें जा बसी। अब राक्षस लोग पृथिवीपर न रहकर जलमें रहने लगे और वहाँ प्राणियोंको पीड़ा देने लगे।

एक बार बहुत-सी नावें उधर आ निकलीं, जो मनुष्योंसे भरी थीं। राक्षसोंने उनमें बैठे हुए सभी लोगोंको पकड़ लिया और बेड़ियोंसे बाँधकर कारागारमें डाल दिया। वे अनेक प्रकारसे उनको सताने लगे। उस दलका प्रधान सुप्रिय नामका एक वैश्य था। वह बड़ा सदाचारी, भस्म-रुद्राक्षधारी तथा भगवान् शिवका परम भक्त था। सुप्रिय शिवकी पूजा किये बिना भोजन भी नहीं करता था। उसने अपने बहुत-से साथियोंको भी शिवकी पूजा सिखा दी थी। सब लोग '**नमः शिवाय**' मन्त्रका जप और शंकरजीका ध्यान करने लगे थे। दारुक राक्षसको जब इस बातका पता चला तो उसने सुप्रियकी बड़ी भर्त्सना की और उसके साथके राक्षस सुप्रियको मारने दौड़े। उन राक्षसोंको आता देख सुप्रिय भगवान् शंकरको पुकारते हुए कहने लगा—'महादेव! मेरी रक्षा कीजिये। दुष्टहन्ता महाकाल! हमें इन दुष्टोंसे बचाइये। भक्तवत्सल शिव! अब मैं आपके ही अधीन हूँ और आप ही मेरे सर्वस्व हैं।'

सुप्रियके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शंकर

* मतान्तरमें दारुकावनको महाराष्ट्रमें भी माना जाता है। महाराष्ट्रमें औरंगाबादसे १२४ मील दूर धौरंडी स्टेशन है, जहाँसे १२ मील दूर स्थित अवढा नागनाथको ही नागेश ज्योतिर्लिंग माना जाता है।

एक विवरमेंसे निकल पड़े। उनके साथ ही चार दरवाजोंका एक उत्तम मन्दिर भी प्रकट हो गया। उसके मध्यभागमें अद्भुत ज्योतिर्मय शिवलिंग प्रकाशित हो रहा था। उसके साथ शिवपरिवारके सब लोग विद्यमान थे। सुप्रियने अपने साथियोंके साथ उनका दर्शन करके पूजन किया। पूजित होनेपर भगवान् शम्भुने प्रसन्न हो स्वयं पाशुपतास्त्र लेकर प्रधान-प्रधान राक्षसों, उनके सारे उपकरणों तथा सेवकोंको भी तत्काल ही नष्ट कर दिया और उन दुष्टहन्ता शंकरने अपने भक्त सुप्रियकी रक्षा की।

इधर राक्षसी दारुकाने दीनचित्तसे देवी पार्वतीकी स्तुति की और अपने वंशकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। इसपर प्रसन्न होकर महादेवीने उसे अभयदान दिया।

इस प्रकार अपने भक्तोंके पालन और उनकी रक्षाके लिये भगवान् शंकर और पार्वती स्वयं वहाँ स्थित हो गये। ज्योतिर्लिंगस्वरूप महादेवजी वहाँ नागेश्वर कहलाये और देवी शिवा नागेश्वरीके नामसे विख्यात हुईं। इनके दर्शनका माहात्म्य अलौकिक है। शिवपुराणमें कहा गया है कि जो आदरपूर्वक इनकी उत्पत्ति और माहात्म्यको सुनेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर समस्त ऐहिक सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें परमपदको प्राप्त होगा।

(११) श्रीरामेश्वर

भगवान् शिवका ग्यारहवाँ ज्योतिर्लिंग सेतुबन्ध-रामेश्वर है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके कर-कमलोंसे इसकी स्थापना हुई थी। लंकापर चढ़ाई करनेके लिये जाते हुए जब भगवान् श्रीराम यहाँ पहुँचे तो उन्होंने समुद्रतटपर बालुकासे एक शिवलिंगका निर्माणकर उसका पूजन किया। यह भी कहा जाता है कि समुद्र-तटपर भगवान् श्रीराम जल पी ही रहे थे कि एकाएक आकाशवाणी हुई—'मेरी पूजा किये बिना ही जल पीते हो?' इस वाणीको सुनकर भगवान्ने वहाँ समुद्रतटपर बालुकाकी लिंगमूर्ति बनाकर शिवजीकी पूजा की और रावणपर विजय प्राप्त करनेका आशीर्वाद माँगा, जो भगवान् शंकरने उन्हें सहर्ष प्रदान किया। उन्होंने लोकोपकारार्थ ज्योतिर्लिंगरूपसे सदाके लिये वहाँ वास करनेकी प्रार्थना भी स्वीकार कर ली।

एक दूसरा इतिहास इस लिंग-स्थापनके सम्बन्धमें यह है कि जब रावणका वध करके भगवान् श्रीराम श्रीसीताजीको लेकर दल-बलसहित वापस आने लगे, तब समुद्रके इस पार गन्धमादन पर्वतपर पहला पड़ाव डाल दिया। उनका आगमन जानकर मुनि-समाज भी वहाँ आया। यथोचित सत्कारके उपरान्त श्रीरामने उनसे पुलस्त्य-कुलका विनाश करनेके कारण ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त होनेका उपाय पूछा। ऋषियोंने कहा—'प्रभो! शिवलिंगकी स्थापनासे सारे पाप तत्क्षण कट जाते हैं।'

तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने हनुमान्जीको कैलाससे शिवलिंग लानेका आदेश दिया। वे क्षणमात्रमें कैलास जा पहुँचे, पर वहाँ शिवजीके दर्शन नहीं हुए। अतएव वे वहाँ शिवजीके दर्शनार्थ तप करने लगे और उनके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने शिवलिंग लेकर गन्धमादन पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। इधर जबतक वह आये तबतक ज्येष्ठ शुक्ला दशमी बुधवारको अत्यन्त शुभ-मुहूर्तमें शिव-स्थापना भी हो चुकी थी। मुनियोंने हनुमान्जीके आनेमें विलम्ब समझकर मुहूर्त निकलता देख श्रीजानकीजीद्वारा निर्मित बालुका-लिंगकी स्थापना करा दी थी। इसपर पवनपुत्र अत्यन्त दुखी हुए। कृपानिधान भगवान् रामने भक्तकी व्यथा समझकर उनके द्वारा लाये शिवलिंगको भी वहीं 'हनुमदीश्वर' नामसे स्थापित कर दिया। श्रीरामेश्वर एवं हनुमदीश्वरका दिव्य माहात्म्य बड़े विस्तारके साथ स्कन्दपुराण, शिवपुराण, मानस आदिमें आया है। गोस्वामी तुलसीदासजीने 'रामेश्वर' महादेवके दर्शनके विषयमें कहा है—

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥

(रा०च०मा० ६।३।१)

श्रीरामेश्वरजीका मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं विशाल है। इस मन्दिरमें श्रीशिवजीकी प्रधान लिंग-मूर्तिके अतिरिक्त और भी अनेक शिवमूर्तियाँ तथा अन्य मूर्तियाँ हैं। नन्दीकी एक बहुत बड़ी मूर्ति है। मन्दिरके अन्दर अनेक कुएँ हैं, जो तीर्थ कहलाते हैं। गंगोत्तरीके गंगाजलको श्रीरामेश्वर ज्योतिर्लिंगपर चढ़ानेका बड़ा माहात्म्य है। श्रीरामेश्वरसे लगभग २० मीलकी दूरीपर धनुष्कोटि नामक तीर्थ है, जो श्राद्धादिके लिये प्रशस्त तीर्थ है। श्रीरामेश्वर तीर्थके आसपास और भी अनेकों तीर्थ हैं। **[क्रमशः]**

सिन्धके कृष्णभक्त हिन्दी कवि

(प्राचार्य डॉ० श्रीदयालजी 'आशा')

कृष्णभक्तिकी अमृतमयी काव्यधारा जो भागवतसे उद्भूत होकर शत-सहस्र भक्तोंको प्रेमका आस्वादन कराती हुई धीरे-धीरे सारे देशमें व्याप्त हुई, उससे सिन्धकी भावमयी भूमि भी अप्रभावित नहीं रही। वहाँ उसने महाराज बसन्तराम-जैसे महान् कृष्णभक्त और उत्कृष्ट कविको जन्म दिया। सिन्धमें अन्य कवि भी हुए, जिन्होंने कृष्णभक्तिके फुटकर पद लिखे, उनमें दीवान सूरतसिंह, भाई कलाचन्द, महाराज जयकृष्णदास, महाराज जवाहरलाल, महाराज भगवानदास, महाराज ठाकुरदास, स्वामी शान्तिप्रकाश महाराज आदि उल्लेखनीय हैं। सिन्धी-भाषी होते हुए भी इन कवियोंने हिन्दी भाषामें उत्कृष्ट कृष्ण-काव्यकी रचना की है। इनमेंसे कुछका विवरण इस प्रकार है—

(१) महाराज बसन्तराम

महाराज बसन्तराम 'सिन्धके सूरदास' कहे जाते हैं। 'श्रीकृष्णायन' महाराज बसन्तरामकी एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। यह एक हिन्दी प्रबन्ध-काव्य है। इसमें नव द्वार हैं—१.श्रीराधाकृष्णद्वार, २. श्रीगोलोकद्वार, ३. श्रीवृन्दावनद्वार, ४. श्रीगिरिराजद्वार, ५. श्रीगोपिकाद्वार, ६. श्रीमधुपुरीद्वार, ७. द्वारावती-द्वार, ८. बलदेवद्वार तथा ९. विज्ञानद्वार। हिन्दी प्रदेशसे दूर रहकर 'श्रीकृष्णायन'-जैसे बृहद् काव्यकी रचना करना, उनकी साहित्यिक साधना और प्रतिभाका द्योतक है। महाराज बसन्तरामका जन्म तत्कालीन हैदराबाद राज्यके सिन्ध जनपदके अजन नामक ग्राममें हरिभक्त महाराज लखीराम शर्माके घरमें फाल्गुन शुक्ल एकादशी विक्रम संवत् १९२९ में हुआ। घरके भक्तिमय परिवेशने बसन्तरामको आराधनाकी ओर मोड़ दिया। किशोरावस्थामें वे हैदराबाद नगरमें आकर रहे, जहाँ उन्होंने विद्याध्ययन किया। अपने युगकी सांस्कृतिक भाषाएँ संस्कृत तथा हिन्दी सीखीं और शास्त्रोंका अध्ययन किया। ज्ञानार्जनके साथ-साथ वे पौरोहित्य कार्य भी करते रहे। वि०सं० १९५० में उनका विवाह हुआ। नाभादास-कृत भक्तमालका पारायण करते-करते उनके मनमें सांसारिक प्रपंचोंके प्रति वितृष्णा जाग्रत् हुई, इसलिये भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्तिका निश्चयकर इन्होंने अपने भाइयोंसे कहा कि 'अब मैं पौरोहित्य कार्य नहीं करूँगा, श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका दर्शन करूँगा।' एकान्तवासकर वे भक्तवत्सल कृष्णचन्द्र आनन्दकन्दके ध्यानमें मग्न रहते। उनके मनमें राधा-कृष्णकी लीलाका गान करनेकी तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हुई। उनके मनमें बाँकेबिहारीके प्रति जो अगाध अनुराग था, वह काव्यके रूपमें कल-कल करता प्रवाहित हुआ। इसके परिणामस्वरूप 'कृष्णायन' का सृजन हुआ।

महाज बसन्तरामने कृष्णायनमें भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी अद्वितीय लीलाओंका उल्लेख करते हुए भक्तिकी महत्ता प्रतिपादित की है। कृष्णायनके विज्ञानद्वारमें कृष्णभक्तिकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए वे कहते हैं—

तीर्थयज्ञ व्रत तप शुभकर्मा। वेदपाठ वर्णाश्रम धर्मा॥
साधन योग सांख्य अरु ज्ञाना। श्रुति संभव साधक मन माना॥
इन सबहिन को फल है जोई। सो सब कृष्णभक्ति सो होई॥
जो फल कृष्णभक्ति उपजावे। सो इन सब साधन नहिं पावे॥

प्रेम ही परमात्मा है, भगवान् श्रीकृष्ण प्रेमके स्वरूप हैं, इस तथ्यकी पुष्टि करते हुए कवि बसन्तराम कहते हैं—

प्रेम ही है श्रीकृष्ण स्वरूपा,
जहाँ प्रेम तहँ हैं घनश्यामा, जहाँ कृष्ण तहँ प्रेम ललामा।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दकी छबिका वर्णन करते हुए कवि बसन्तरामजी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण मोरमुकुट, वनमाला और चमकते हुए वस्त्रोंसे अत्यन्त शोभनीय लग रहे हैं। उनके अधरोंपर मुरली विराजमान है, योगेश्वरकी ऐसी छबि देखकर मन मुग्ध हो जाता है। कवि बसन्तरामके मूल शब्दोंमें—

मोर मुकुट जिहँ माथ सुहाये। वसन तड़ित द्युति सक मन भाये॥
मुरली अधर सोह बहु सोहै। योगेश्वरहुँ निरख मन मोहै॥

वृन्दावन रसेश्वरका लीलास्थल है, इसलिये यह नगर रसकी निधि है, अन्ततः कवि वृन्दावनको भी नमस्कार करते हैं। वृन्दावनकी शोभा कमनीय है, जो जीवके मानसिक आलोडन अर्थात् विकाररूपी अग्निको बुझा देती है। कविके मूल शब्दोंमें—

अब मैं एनः वन्दौ युत नेहा, श्रीवृंदावन रस निधि जेहा॥
सब बन वर शोभा अति नीकी, निश्चय तपन बुझावत मन की॥

(२) दीवान सूरतसिंह

भक्तवर सूरतसिंहका जन्म हैदराबाद (सिन्ध) नगरमें एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय परिवारमें सन् १८३२ ई० में हुआ था। इनके पिताका नाम हिम्मतसिंह था। इन्हें सिन्धी, हिन्दी, पंजाबी, उर्दू और फारसी भाषाओंका अच्छा ज्ञान था। इनकी साधु-सन्तोंकी संगतिमें बड़ी रुचि थी। ये भगवान् कृष्णके उपासक थे। भक्त कवि होनेके साथ ही ये संगीतशास्त्रके भी पण्डित थे, अतः इनकी रचनाओंमें संगीतात्मकताका भी पुट रहता है। राग कामोदमें निबद्ध इनकी एक रचना ध्यातव्य है, जिसमें भगवान् कृष्णके गाय चराकर वृन्दावनसे लौटनेका वर्णन है—

अब गउ चार आए मदन गोपाल।
पीत पीतांबर लाल कमलिया टेढ़ी पगरी मधुरी चाल॥
मंद मंद मुसकावत आवत पग-पग नूपुर करत निहाल।
लटपटि चाल सोहै, कर लकड़ी गउ रज भरे नवल विशाल॥
बछरे मेलि सब गौवां मिलावे देत घास गौअनि प्रतिपाल।
ग्वाल बाल घर अपने आए ग्वालिनि पूछे कृष्ण के हाल॥
चल री चल अब नन्द महल को देखैं नन्दनन्दन बृजलाल।
चरन परस लै बिहारीजू के सुरत श्याम है सदा दयाल॥

दीवान सूरतसिंहजी न सिर्फ भगवान् श्रीकृष्णकी बाल-लीलाका हृदयस्पर्शी वर्णन करते हैं, अपितु उनकी बाँसुरी जिसे सुनकर गोपियाँ और ग्वाल कृष्णके पीछे दौड़ते थे, की महिमा गाते हुए कहते हैं—

यह तान बंसी की नाहीं जान है बेजानोंकी,
सुधा अमी रस की तान, सुरापान की खान।

भगवान् श्रीकृष्णकी बाँसुरी मृतकोंमें जीवनका संचार करती थी, इसलिये कवि कृष्णसे विनय करते हैं—

बजावो बाँसुरी में भैरवीकी तान को कान,
जो कान परते ही पर जाती है बेजान में जान।

काव्य-कलाकी दृष्टिसे भी उपर्युक्त काव्यांश महत्त्वपूर्ण है, प्रथम पंक्तिमें कानका अर्थ भगवान् कृष्ण है और द्वितीय पंक्तिमें कानका अर्थ कर्ण है।

राधा कृष्णके वियोगमें अति व्याकुल हैं, बसन्त ऋतु हो या सावनकी ऋतुके सुन्दर दृश्य—इन्हें देखकर राधाके अन्तःकरणमें विरहानल भभक उठता है—

सावन की ऋतु आई रे आई।
पिया बिन मोकूँ नींद न आवे,
श्याम घटा घन बिजली चमके,
कोई श्याम मुझे आन मिलावे।
सावन...
साँवरी सुरत बिन चैन न आवे,
अब कोई कान मुझे आन मिलावे।
सावन...

यदि सूरतसिंह और सूरदासका सम्यक् अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होगा कि दोनों कवियोंका भावनात्मक धरातल करीब-करीब एक-सा ही है और कहीं-कहीं तो इन कवियोंकी अनुभूतियोंमें इतना साम्य हो गया है कि यदि भाषाका भेद तोड़ दिया जाय तो वे एक ही मान ली जायँगी।

राधाको पपीहेका मीठा स्वर सुनकर प्रियतमकी याद आ जाती है और पपीहेसे अपने प्रियतम कृष्णका समाचार पूछती है—

पपीहा मीठा तेरा बोल, दूर सीं आए तेरे कोल।
कहाँ बसत मेरा पीया बनवारी रे कहाँ झुलत राधे डोल॥

(३) स्वामी कलाचन्द

स्वामी कलाचन्दका जन्म ६ अप्रैल १८६७ ई० को हैदराबाद (सिन्ध) नगरमें हुआ था। इनके पिताका नाम रामचन्द गिदवानी था। कहा जाता है कि ये पूर्वजन्मके योगभ्रष्ट महात्मा थे। बचपनसे ही इन्हें एकान्त बहुत

प्रिय था। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही इनका मन संसारसे हट गया। ये पूजागृहमें श्यामसुन्दरकी प्रतिमाके सामने बैठकर ध्यानमग्न हो जाते थे और इनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहने लगते थे। कुछ समय पश्चात् इन्हें सन्त केशवदासजीका अनुग्रह प्राप्त हो गया। अब ये कृष्णप्रेममें छके हुए उनकी रूप-माधुरीका चिन्तन करते रहते । स्वामी कलाचन्दजी संगीत कलाके मर्मज्ञ और सिद्धहस्त गायक थे।

आपने हिन्दी एवं सिन्धीमें विविध राग-रागिनियोंमें फुटकर पद लिखे हैं, जिनमें भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका उल्लेख किया है, परंतु इस समय इनके केवल २७ हिन्दी पद ही प्राप्त होते हैं। स्वामी कलाचन्द शुद्ध द्वैतवादी दीख पड़ते हैं, ऐसा इनके काव्यसे प्रतिभासित होता है। उनका साँवला सुन्दर जल-थल, बाह्य और अन्तर्जगत् सबमें परिव्याप्त है—

साँवरो सुंदर प्यारो गिरधारी मोहन मुरली वारो
शारदा शेष महेश और इंद्र सब में मोहन प्यारा।
अंदर बाहर जल में थल में मोहन को उजियारो॥

श्रीकृष्णके विरहमें संसारके सारे पदार्थ कविको फीके लगते हैं, यहाँतक कि अपने प्राण भी उसे नहीं भाते, उसके मनमें मुरलीमनोहरकी झंकार है, कवि श्रीकृष्णके वियोगमें इतना व्याकुल है कि वह या तो प्रभुका दर्शन चाहता है या मृत्यु।

या मोहि प्रीतम दरस दिखावे, या मोहि खावे काल,
तड़फ तड़फ कल्याण जीव जान्दा अब आइ मिलो गोपाल।

कवि श्रीकृष्णके वियोगमें व्यथित है, उन्हें मुरलीमनोहरके दर्शनकी प्यास है। उनके दर्शनकी प्रतीक्षामें उनके नैनोंमें नींद नहीं, वे निश दिन गंगा-यमुना बहाते रहते हैं, वे कहते हैं—

मोहनलाल प्रिया बनवारी आइ मिलो गोविंद गिरधारी,
दीजे दान माँगत जन को तेरे दर्शन को बेखारी।
मोहे नैन बहावे, नीद न आये, नहीं, जीव करारी।
दास कल्याण तेरे दरस प्यासी निस दिन आस तुम्हारी।

(४) महाराज जयकृष्णदास

भक्त जयकृष्णदासका जन्म हैदराबाद (सिन्ध)-के निकटवर्ती गिटूबन्दर क्षेत्रमें १३ नवम्बर सन् १९६१ ई० को एक प्रतिष्ठित ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनके पिताका नाम पं० स्थाउँराम शर्मा था। प्रारम्भिक शिक्षाके बाद ये काशी आये और यहाँ विद्याध्ययनकर षट्दर्शन और ज्योतिषके प्रकाण्ड विद्वान् बने। ये भगवान् कृष्णके परम भक्त थे और नित्य एकान्तमें अन्तरंग साधना करते थे।

महाराज जयकृष्णदासने हिन्दी और सिन्धीमें अनेक फुटकर पद लिखे हैं, जो भजन कल्पतरुमें संग्रहीत हैं। ये अपने पदोंमें 'जयकृष्णा'की छाप लगाते थे। उनके पदोंसे प्रतिभासित होता है कि वे कृष्णके अनन्य उपासक थे, वे भगवान् श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व मानते हुए कहते हैं—

छाड़ि गोपाल अवर जे सुमरूँ तो लाज जननी,
विष की मेरुँ कहा ले कीजे, अमृत एक कनी
मन कर्म वचन और नहिं चितवों जब तक श्याम धनी।
क्या ले करहु कांच की संग्रह, छोड़ि आड़ि अमूल्य मनी।
श्रीकृष्ण भजन बिन है 'जयकृष्णा' प्राण जैसे धमनी।

मीरा तथा सूरकी भाँति जयकृष्णदासने कृष्णभक्तिसे ओत-प्रोत पदोंकी रचना की है। भगवान् श्रीकृष्णकी बाल्यावस्थाका वर्णन कवि उनकी माताके मुखसे करवाते हैं—

प्राणनाथ प्रात भयो जागो बलिहार जाऊँ।
नयन ज्योति देखि देखि गुन तिहार गाऊँ।
उठो लाल हो दयाल तोहि दधि पिलाऊँ।
माखन मिस्त्री तनक रोटी तुम्हें रुचि खिलाऊँ।
मुरली तेरी मदन मोहन, मोतियनि जड़ाऊँ।
श्याम सुंदर मधुर मूर्ति, पेख मन ध्याऊँ।

(५) महाराज भगवानदास

भगवानदासजीका जन्म सन् १८७२ ई० के लगभग हैदराबाद (सिन्ध)-के निकट टण्डा-अल्हयार नगरमें सारस्वत ब्राह्मण-परिवारमें हुआ था। इनके पिताका नाम पं० जेतूराम था। भगवानदासजीको हिन्दी और संस्कृतका अच्छा ज्ञान था। इन्होंने पुष्करनिवासी स्वामी ब्रह्मानन्दजीसे दीक्षा ली और

साधनामय जीवन बिताया।

महाराज भगवानदास कृष्णकी भक्तिमें तल्लीन होकर कहते हैं—

मुझे कृष्णस्वरूप मन भाया, मेरे दिल के बीच समाया,
श्याम सुंदर मोहन रूपा, यो है सब भूपों का भूपा॥

आधुनिक सिन्धी भक्त कवियोंमें सद्‌गुरु स्वामी शान्तिप्रकाशजी महाराजजी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। ये प्रेमप्रकाशसम्प्रदायके संस्थापक सन्त स्वामी टैंऊराम महाराजके धर्मपीठके अधिकारी थे। ये प्रतिभाशाली, परोपकारी, उदारचेता, कर्मयोगी, समाज-सुधारक सन्त थे। भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य उपासक थे, उन्होंने सिन्धी एवं हिन्दी भाषामें काव्य-रचना की है।

भगवान् श्रीकृष्णके नामकी महिमा गाते हुए स्वामी शान्तिप्रकाशजी महाराज कहते हैं—

जय श्रीकृष्ण पाँच चरणका मंत्र बड़ा उत्तम है।
गुरुकृपा से जिसको मिलिया तिसके दुख निवारे।

'जय श्रीकृष्ण' मन्त्रकी साधना करनेसे जीव संसाररूपी भवसागरसे पार हो जायगा, जिसको यह मन्त्र गुरुकृपासे मिलता है, उसके दु:ख दूर हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णकी अनुकम्पाका उल्लेख करते हुए स्वामीजी कहते हैं—

बहुत जन्म से पीते आये दूध माता की गोदी में,
ऐसी चाल चली श्रीकृष्ण दूध नहीं वह पीता हूँ।
दासोहम् यह मंत्र गुरु का रैन दिवस मैं रटता था,
माखनचोर दा हर लीनी, दा बिन अब तो गाता हूँ।
चोरासी लख युनि नगर में फिर फिर चकर लगाते थे।
कर्मन का धन खाइ लिया हरि, अब तो कहाँ न जाता हूँ।

कविके अन्त:करणमें कृष्णके प्रति इतना तो अनुराग उत्पन्न हुआ कि वे कृष्णका साक्षात्कारकर जीवन्मुक्त हो गये। अब उन्हें फिर माताके दूध पीनेकी आवश्यकता नहीं, अर्थात् ये जन्म-मरणके चक्रमें नहीं आयेंगे, कवि कहते हैं कि ये साधनावस्थामें दासोहम् मन्त्रका जप करते थे, अर्थात् स्वयंको कृष्णका दास मानकर उन्हें विनय करते थे, किंतु भगवान् श्रीकृष्णने कृपाकर 'दा' उनसे हर ली। इसलिये कवि अब सोहम्‌का मन्त्र साधते हैं।

इन ख्यातनामा कवियोंके अतिरिक्त कवि हुंदराज दुखायल, महाराज देवीदास, डॉ० श्रीप्रभदास वाधवा, श्रीजीवणदास आहुजा, श्रीकृष्णलाल बजाजने भी कृष्णभक्तिसम्बन्धी भजन लिखे हैं।

गजेन्द्रकृत श्रीहरि-स्तुति

(श्रीरामेश्वरजी पाटीदार)

दुखहरन प्रनतन्हँ भगत सुख कारन कृपालु रमापती।
मैं जीव जड़ मम बुद्धि अपि जड़ करउँ कस तव अस्तुती॥
सब भाँति उन्ह मोहि परिहरेहुँ परतीति रहि मम हिय जेहीं।
अब प्रान पर प्रभु मोर संकट बेगि आइ हरिअ तेहीं॥

हे शरणागतके दु:खोंको हरनेवाले! भक्तोंके सुखोंके कारण! कृपाके धाम और महालक्ष्मीके पति! हे श्रीहरि! मैं एक जड़ जीव हूँ और मेरी बुद्धि भी जड़ है, मैं आपकी स्तुति किस प्रकार करूँ? जिनके प्रति मेरे हृदयमें अत्यन्त विश्वास था, उन लोगोंने सब प्रकारसे मुझे त्याग दिया है। हे प्रभु! अब तो मेरे प्राणोंपर संकट है। अत: शीघ्र ही आकर मेरा संकट हरिये।

[कविकी अप्रकाशित रचना 'श्रीकृष्णचरितमानस' से] [प्रेषक—श्रीअशोकजी चौरे]

गायके दूध, घी, मक्खन, दही, मट्ठेकी महिमा अपार

❀ गायकी रीढ़में 'सूर्यकेतु' नामक नाड़ी होती है, जो सूर्यके प्रकाशमें जाग्रत् होती है, इसलिये गाय सूर्यके प्रकाशमें रहना पसन्द करती है। यह नाड़ी सूर्यकी किरणोंद्वारा रक्तमें स्वर्णक्षार बनाती है, वही स्वर्णक्षार गोरसमें विद्यमान है। इसलिये गायका दूध, मक्खन, घी, स्वर्ण आभावाला है, जो सर्वरोगनाशक और विषविनाशक होता है। गायके दूधमें जो स्वर्णतत्त्व पाये जाते हैं, वे तत्त्व माँके दूधके अतिरिक्त दुनियाके किसी भी पदार्थमें नहीं मिलते हैं।

❀ गायके दूधमें स्वर्णतुल्य कैरोटीन पदार्थ होता है, जो आँखोंकी ज्योति बढ़ाता है और हृदयको पुष्ट करता है।

❀ गायके दूधमें 'सेरीब्रोमाइड' तत्त्व है, जो दिमाग एवं बुद्धिके विकासमें सहायक है।

❀ गायके दूधसे व्यक्ति खुशमिजाज रहता है, गायके दूधमें 'ट्रिप्टोफेन' सबसे अधिक पाया जाता है, जो 'सैरीटोनिक' हारमोन्सकी कमी नहीं होने देता। इस हारमोन्सकी कमीसे ही आदमीका मूड खराब रहता है।

❀ गायके दूधमें 'कंजूगेटिड लिनोलिक एसिड (सी०एल०ए०)' यौगिक सर्वाधिक पाया जाता है, जो कैंसररोधी है।

❀ गायके दूधमें ही Strontium तत्त्व है, जो अणु विकिरणका प्रतिरोधक है।

❀ गोदुग्धमें मनुष्यमें पहुँचे रेडियोधर्मी कणोंका प्रभाव नष्ट करनेकी असीम क्षमता है।—शिराविच (रूस)

❀ गायके दूधमें 'स्ट्रोन्शियम' पाया जाता है, जिससे होमियोपैथिक दवा 'स्ट्रेन्शिया' बनती है, जो पुरानी चोटोंमें काम आती है।

❀ दूधमें अमीनो एसिड पर्याप्त मात्रामें मिलता है। इससे शरीर बढ़ता है तथा कोशिकाओंकी टूट-फूटकी क्षतिपूर्ति होती है।

❀ आजके वैज्ञानिक विश्लेषणसे भी यह स्पष्ट हो चुका है कि गायके दूधमें पौष्टिकता और रोगोंसे लड़नेकी अद्भुत शक्ति है।

❀ दुग्धकल्पमें दूध पीनेसे मूत्र बहुत आता है, इसलिये मूत्राशयके रोग पथरी आदि दूर हो जाते हैं। स्त्रियोंमें गर्भाशय एवं मासिक धर्मकी खराबी दूर हो जाती है।

❀ बार-बार पेशाब आना, प्रमेह तथा मिरगीमें गायका दूध लाभकारी होता है।

❀ गायका दूध चेचक रोगका नाशक होता है।

❀ बुद्धिजीवी मनुष्यकी रोजकी उचित खुराकमें गाँधीजीने गायका दूध प्रमुख माना है।

❀ अमेरिकन पत्र 'फिजिकल कल्चर' के सम्पादक और प्रसिद्ध दुग्धाहार चिकित्सक मेकफेडनका कथन है कि इस जगत्में गायके दूधसे बने मक्खनके समान सर्वगुणसम्पन्न पौष्टिक खाद्य-पदार्थ कोई दूसरा नहीं है।

❀ मैनपुरी नगरमें एक डॉ० कपूर थे। उन्होंने ९० वर्षकी आयुमें पार्थिव शरीर छोड़ा। इस अवस्थामें भी उनका एक बाल भी श्वेत नहीं हुआ था। वे नित्य बालोंमें गो-दुग्धके फेनका प्रयोग करते थे।

❀ रूसी वैज्ञानिक शिरोविचने आणविक विकिरणसे रक्षापर अपने प्रयोगके दौरान पाया कि गोघृतकी अग्निमें आहुति देनेपर उससे निकली सुवास जहाँतक फैलती है, वहाँतकका सारा वातावरण प्रदूषण एवं आणविक विकिरणसे मुक्त हो जाता है। रूसमें ही गायके घीसे हवन करके उसके बारेमें अनुसन्धान किया गया था। जहाँ-जहाँ जितनी दूरीमें उस हवनके धुएँका प्रभाव फैला, उतना क्षेत्र कीटाणुओं और बैक्टीरियाके प्रभावसे मुक्त हो गया।

❀ गायके घीमें अधिकतम प्राणवायु निर्माणक रसायन रहते हैं। एक चम्मच गायके घीको कण्डोंकी आगमें आहुति देनेपर एक टनसे अधिक प्राणवायु (ऑक्सीजन) बनती है, जो अन्य किसी भी उपायसे असम्भव है।

❀ गायके घीको चावलके साथ मिलाकर जलानेपर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गैसें जैसे—इथीलीन ऑक्साइड, प्रोपलीन ऑक्साइड, फार्मल्डिहाइड आदि बनती हैं।

आजकल सर्वाधिक प्रयुक्त होनेवाली जीवाणुरोधक गैस इथीलीन ऑक्साइड है, जो ऑपरेशन थियेटरसे लेकर जीवनरक्षक औषधि बनानेमें उपयोगी है। कृत्रिम वर्षा करानेके लिये प्रोपलीन ऑक्साइड गैसका वैज्ञानिक मुख्य रूपसे प्रयोग करते हैं।

❀ गोघृत पर्यावरणकी शुद्धिमें मददगार, बुद्धिका टॉनिक, ओजोनके छेदोंको भरनेवाला है।

❀ गायका घी मस्तिष्क तथा हृदयकी सूक्ष्मतम नाडियोंमें पहुँचकर शक्ति प्रदान करता है।

❀ नासिकामें गोघृतके उपयोगसे मस्तिष्क कोशिकाओंमें स्थिरता बनी रहती हैं और वे शक्ति तथा प्राणवायुसे परिपूर्ण रहती हैं, जिससे हमारा व्यवहार शान्त तथा ठण्डा रहता है।

❀ गोघृत कॉलेस्ट्रॉलको बढ़ाता नहीं, बल्कि कम करता या नियन्त्रणमें रखता है। इसके सेवनसे हृदयपर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता।

❀ पीले रंगका कैरोटीन नामक द्रव्य केवल गोघृतमें है। कैरोटीन तत्त्व शरीरमें पहुँचकर विटामिन 'ए' तैयार करता है। गायके चारेमें अधिक हरा चारा मिलाकर अधिक मात्रामें विटामिन 'ए' प्राप्त किया जा सकता है।

❀ स्वर्गकी अप्सरा उर्वशी राजा पुरूरवाके पास गयी तो उसने अमृतकी जगह गायका घी पीना ही स्वीकार किया। (श्रीमद्भा० ९।१४।२२)

❀ जो मक्खन दहीके बिलोनेसे निकलता है, उसमें कुछ ऐसे सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, जो न केवल पाचनशक्तिको बढ़ाते हैं, बल्कि उनका व्यवहार कैंसर-जैसे रोगोंसे भी बचा सकता है।

❀ अमेरिकी वैज्ञानिक प्रो० जार्ज शीमनके अनुसार गायका दही हृदय-रोगकी रोकथाममें कारगर है। यह रक्तमें बननेवाले 'कॉलेस्ट्रॉल' नामक सख्त पदार्थको मिटानेकी क्षमता रखता है।

❀ 'नेचर' पत्रिकाके अनुसार गायके दहीमें एक ऐसा मित्र बैक्टीरिया पाया गया है, जो एड्सकी बीमारीको फैलनेसे रोकनेमें मददगार है।

❀ गर्भवती महिला अगर चाँदीकी कटोरीमें गायके दूधमें जमाया हुआ दहीका सेवन नित्य करे तो गर्भमें आनेवाला बालक मेधावी और तेजस्वी होगा, विनोबाजी प्रातः यही दही खाते थे। उनके पेटका अल्सर दूर हो गया।

❀ सन्त विनोबाकी 'तक्रं तारकम्' नामक किताबमें लिखा है कि ७५ फीसदी बीमारियाँ गोदुग्धके मट्ठेसे ही मिट जाती हैं।

❀ गायके दूधसे बनी छाछ किसी भी प्रकारके नशे जैसे —गाँजा, भाँग, चिलम, तम्बाखू, शराब, हीरोइन, स्मैक इत्यादिसे होनेवाले प्रभावको ही कम नहीं करती, अपितु इसके नियमित सेवनसे नशेका सेवन करनेकी इच्छा भी धीरे-धीरे कम हो जाती है।

[संकलनकर्ता—श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल]

तक्र-माहात्म्य

[छाँछ या मट्ठेके गुण]

कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठोभवे-
द्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः।
इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः
कुष्ठित्वः च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति॥

अर्थात् कैलासपर यदि तक्र रहता तो क्या भगवान् शिव नीलकण्ठ ही रहते? वैकुण्ठमें यदि तक्र होता तो क्या केशव (भगवान् विष्णु) साँवले ही रहते? देवलोकके राजा इन्द्र क्या दुर्भग (सौन्दर्यहीन) ही रहते? चन्द्रमा-जैसे द्विजपतिको क्षयरोग होता? श्रीगणेशजीका उदर इतना बढ़ा होता? कुबेरको कुष्ठ रहता? और अग्निदेवके अन्दर दाह रहता? कभी नहीं, अर्थात् तक्रके सेवनसे विष, विवर्णता, असौन्दर्य, क्षय, उदररोग, कुष्ठ और दाह आदि विविध रोग दूर होते हैं। **[योगरत्नाकर]**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।४२ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा रात्रिशेष ५।१९ बजेतक	८ अगस्त	**कुम्भराशि** सायं ४।४२ बजेसे, **पंचकारम्भ** सायं ४।४२ बजे।
द्वितीया ,, ११।५० बजेतक	बुध	शतभिषा अहोरात्र	९ ,,	× × ×
तृतीया ,, ११।२७ बजेतक	गुरु	शतभिषा प्रातः ६।१ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ११।३८ बजेसे रात्रिमें ११।२७ बजेतक, **मीनराशि** रात्रिमें १२।९ बजेसे, **कजरीतीज।**
चतुर्थी ,, १०।३५ बजेतक	शुक्र	पू० भा० ,, ६।१४ बजेतक	११ ,,	**संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।५ बजे।
पंचमी ,, ९।१९ बजेतक	शनि	उ० भा० ,, ५।५८ बजेतक	१२ ,,	**मेषराशि** रात्रिशेष ५।१७ बजेसे, **श्रीचन्द्रषष्ठीव्रत, मूल** प्रातः ५।५८ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिशेष ५।१७ बजे।
षष्ठी ,, ७।३९ बजेतक	रवि	अश्विनी रात्रिशेष ४।१५ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।३९ बजेसे, **हलषष्ठी (ललहीछठ), मूल** रात्रिशेष ४।१५ बजेतक।
सप्तमी सायं ५।४० बजेतक	सोम	भरणी रात्रिमें २।५८ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** प्रातः ६।४० बजेतक, **श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत** (स्मार्त्त)।
अष्टमी दिनमें ३।२६ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ,, १।२७ बजेतक	१५ ,,	**वृषराशि** दिनमें ८।३५ बजेसे, **श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत** (वैष्णव), **गोकुलाष्टमी, स्वतन्त्रतादिवस।**
नवमी ,, १।४ बजेतक	बुध	रोहिणी ,, ११।५० बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।५० बजेसे, **उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका श्रीकृष्णजन्मव्रत।**
दशमी ,, १०।३८ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ,, १०।९ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।३८ बजेतक, **मिथुनराशि** दिनमें ११।० बजेसे, **सिंहसंक्रान्ति** दिनमें २।४५ बजे।
एकादशी ,, ८।९ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ,, ८।३१ बजेतक	१८ ,,	**जयाएकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी प्रातः ५।४७ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ,, ७।१ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।३३ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें १।२३ बजेसे, **शनिप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें १।३१ बजेतक	रवि	पुष्य सायं ५।४२ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** दिनमें २।३२ बजेतक।
अमावस्या ,, ११।५१ बजेतक	सोम	आश्लेषा दिनमें ४।४१ बजेतक	२१ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ४।४१ बजेसे, **सोमवती अमावस्या।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रप्रद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।३३ बजेतक	मंगल	मघा दिनमें ४।१ बजेतक	२२ अगस्त	**मूल** दिनमें ४।१ बजेतक।
द्वितीया ,, ९।४० बजेतक	बुध	पू० फा० ,, ३।४४ बजेतक	२३ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें ९।४७ बजेतक।
तृतीया ,, ९।१५ बजेतक	गुरु	उ० फा० ,, ३।५६ बजेतक	२४ ,,	**हरितालिका (तीज) व्रत।**
चतुर्थी ,, ९।२२ बजेतक	शुक्र	हस्त ,, ४।३७ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।१९ बजेसे रात्रिमें ९।२२ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिशेष ५।१३ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १०।२ बजेतक	शनि	चित्रा सायं ५।५० बजेतक	२६ ,,	**ऋषिपंचमी।**
षष्ठी ,, ११।६ बजेतक	रवि	स्वाती रात्रिमें ७।२८ बजेतक	२७ ,,	**लोलार्कषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, १२।४० बजेतक	सोम	विशाखा ,, ९।३४ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।४० बजेसे, **वृश्चिकराशि** दिनमें ३।३ बजेसे।
अष्टमी ,, २।३१ बजेतक	मंगल	अनुराधा ,, ११।५८ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३६ बजेतक, **श्रीराधाष्टमीव्रत, मूल** रात्रिमें ११।५८ बजेसे।
नवमी रात्रिशेष ४।३२ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा ,, २।३२ बजेतक	३० ,,	**धनुराशि** रात्रिमें २।३२ बजेसे।
दशमी अहोरात्र	गुरु	मूल रात्रिशेष ५।९ बजेतक	३१ ,,	**पू०फा०का सूर्य** दिनमें ११।२५ बजे, **मूल** रात्रिशेष ५।९ बजेतक।
दशमी प्रातः ६।३६ बजेतक	शुक्र	पू० षा० अहोरात्र	१ सितम्बर	**भद्रा** रात्रिमें ७।३२ बजेसे।
एकादशी दिनमें ८।२९ बजेतक	शनि	पू० षा० प्रातः ७।३८ बजेतक	२ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।२९ बजेतक, **पद्माएकादशीव्रत (सबका), वामनावतार।**
द्वादशी ,, १०।४ बजेतक	रवि	उ० षा० दिनमें ९।४८ बजेतक	३ ,,	**प्रदोषव्रत, महारविवारव्रत।**
त्रयोदशी ,, ११।१३ बजेतक	सोम	श्रवण ,, ११।३५ बजेतक	४ ,,	**कुम्भराशि** रात्रिमें १२।१४ बजेसे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १२।१४ बजे।
चतुर्दशी ,, ११।५७ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, १२।५५ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।५७ बजे रात्रिमें १२।१ बजेतक **व्रत-पूर्णिमा, अनन्तचतुर्दशी-व्रत।**
पूर्णिमा ,, १२।६ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, १।४३ बजेतक	६ ,,	**पूर्णिमा, महालयारम्भ, प्रतिपदाश्राद्ध।**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

कोई किसीका नहीं है

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने लिखा कि 'क्या कारण है कि एक जीव अच्छे श्रीमान्‌के घरमें जन्म लेकर, जिसको कुछ भी तकलीफ नहीं, असमयमें ही कालके गालमें चला जाता है। बालक आया था सोने-सा शरीर लेकर। ग्यारह महीने अपनी लीलाएँ दिखायीं, मुझे मुग्ध किया, मातृस्नेहमें डाला। फिर प्रभुने वियोग दिला दिया।' इसका उत्तर यह है कि प्रत्येक जीव अपने-अपने कर्मके अनुसार जगत्‌में जन्म लेता है और उस जन्मका प्रारब्ध पूरा होते ही कर्मवश ही चला जाता है। इसमें प्राय: किसीका कोई वश नहीं चलता। असलमें यहाँ न कोई किसीका पुत्र है—न माता-पिता है। ये सब तो नाटकके स्टेजपर खेलनेके स्वाँगकी भाँति हैं। श्रीमद्भागवतमें राजा चित्रकेतुकी कथा आती है। राजा चित्रकेतुके एकमात्र शिशु राजकुमारकी मृत्यु होनेपर उन्हें बड़ा दु:ख हुआ। वे पुत्रशोकके मारे रोते-कलपते हुए चेतनाहीन-से हो गये। तब महर्षि अंगिरा और देवर्षि नारदजी उनके पास आये, उन्होंने समझाते हुए राजासे कहा—'तुम जिस बालकके लिये इतना शोक कर रहे हो, बतलाओ तो वह इस जन्म और इससे पहलेके जन्मोंमें वस्तुत: तुम्हारा कौन था और तुम उसके कौन थे और अगले जन्मोंमें उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा? जैसे जलके वेगसे धूलके कण कभी परस्पर मिल जाते हैं और कभी बिछुड़ जाते हैं, वैसे ही कालके प्रवाहमें जीवोंका मिलना-बिछुड़ना होता रहता है। हम, तुम और हमलोगोंके साथ इस जगत्‌में जितने भी शरीरधारी जीव हैं, वे सब इस जन्मके पहले इस रूपमें नहीं थे और मरनेके बाद भी नहीं रहेंगे। इसीसे सिद्ध है कि इस समय भी उनका वस्तुत: अस्तित्व नहीं है। सत्य वस्तु कभी बदलती नहीं है। ऐसे एक भगवान् ही हैं। वे ही सारे प्राणियोंके स्वामी हैं। उनमें न जन्मका विकार है, न मृत्युका। वे सदा इच्छा-अपेक्षारहित हैं। उन्हींके द्वारा यह प्राणियोंके सृजन, पालन और संहारका खेल होता रहता है।

असलमें अनित्य होनेके कारण ये शरीर असत्य हैं और इसी कारण विभिन्न अभिमानी भी असत्य हैं। त्रिकालाबाधित सत्य तो एकमात्र परमात्मा ही है। इसलिये शोक नहीं करना चाहिये।'

इसपर भी जब राजाका शोक पूरी तरहसे दूर नहीं हुआ, तब नारदजीने राजकुमारके जीवात्माको बुलाकर उसे समझाया, तब जीवात्माने कहा—'नारदजी महाराज! मैं अपने कर्मोंके अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें पता नही कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमेंसे ये लोग किस जन्ममें मेरे माँ-बाप हुए। अलग-अलग जन्मोंमें अलग-अलग सम्बन्ध हो जाते हैं। इस जन्ममें जो मित्र है, वही दूसरे जन्ममें शत्रु हो सकता है, इस जन्मका पुत्र अगले जन्ममें पिता हो सकता है। इसी तरह सब परस्पर भाई-बन्धु, शत्रु-मित्र, प्रेमी-द्वेषी, मध्यस्थ-उदासीन बनते रहते हैं। जैसे सोना आदि खरीद-बिक्रीकी चीजें एक व्यापारीसे दूसरे व्यापारीके हाथोंमें आती-जाती रहती हैं, वैसे ही जीव भी कर्मवश भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है। जबतक जिसका जिस वस्तुसे सम्बन्ध रहता है, तभीतक उसकी उसमें ममता रहती है। जीव गर्भमें आकर जबतक जिस शरीरमें रहता है तभीतक उसको अपना शरीर मानता है। वास्तवमें तो जीव अविनाशी, नित्य, जन्मादिरहित, सर्वाश्रय और स्वयंप्रकाश है। इसका न कोई प्रिय है न अप्रिय है, न अपना है न पराया है। ये राजा-रानी इसके लिये क्यों शोक कर रहे हैं?'

इसपर राजा चित्रकेतुको विवेक हो गया। अतएव जीव वास्तवमें अपना नहीं है। जीवोंमें कर्मवश आना-जाना लगा रहता है। भोग पूरे होते ही उसे चले जाना पड़ता है। संयोग-वियोगमें कर्म ही प्रधान कारण है। प्रभु तो निरपेक्ष नियन्तामात्र हैं।

(२) सरस्वतीदेवीके वशमें होनेकी कोई साधना मैंने कभी की नहीं है। ग्रन्थोंमें ऐसे बहुत-से प्रयोग पाये जाते हैं, जिनसे सरस्वतीदेवीकी कृपा-प्राप्ति मानी गयी है। परंतु अपना अनुभव न होनेसे कुछ लिखा नहीं जा सकता।

विभिन्न पुराणों, मन्त्रग्रन्थों और तन्त्रोंमें ऐसे अनेक प्रयोगोंका वर्णन है। बंगला लिपिमें छपे 'तन्त्रसार' नामक ग्रन्थमें ऐसे बहुत-से प्रयोगोंका उल्लेख किया गया है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

दु:खमें भी भगवान्‌की दया

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। मनुष्यकी दृष्टि अत्यन्त सीमित है। वह अपनी आँखोंके सामने घटनेवाली कुछ घटनाओंको ही केवल देख सकता है। उसकी दृष्टिमें केवल स्थूल देह ही सत्य है और वह ममता-मोहके चक्करमें फँसकर चाहता है कि मेरा और मेरे सम्बन्धियोंका स्थूल शरीर मुझसे अलग न हो। यदि कहीं उसकी इच्छाके विपरीत कोई घटना घटित हुई तो वह बहुत दुखी होता है और विक्षिप्त होकर भगवान्‌की सत्ता, महत्ता और उनकी दयालुतापर ही आक्षेप करने लगता है, परंतु इससे भगवान्‌की दयापूर्ण दृष्टिमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। वे सदासे सबका कल्याण करते आये हैं और कल्याण ही करते रहते हैं।

इसे इस प्रकार समझिये—कोई दयालु स्वामी अपने किसी कर्मचारीको कोई उच्चपद देना चाहता हो और इसीके लिये उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानके लिये परिवर्तन कर रहा हो—परन्तु वह कर्मचारी और उसके घरवाले उच्चपद पानेकी बात न जानें, उस परिवर्तनका विरोध करें और रोयें-पीटें, पर दयालु स्वामी उनके रोने-गिड़गिड़ानेपर तनिक भी ध्यान न देकर अपनी दयाकी वर्षा करता है। आपके सुपुत्र होनहार थे। उनके कर्म उज्ज्वल और साधना ऊँची थी—इस बातका यह प्रबल प्रमाण है कि अन्तिम श्वासतक उन्होंने भगवन्नामका उच्चारण किया। इससे सिद्ध होता है कि भगवान्‌ने उन्हें इससे भी उत्तम स्थिति देनेके लिये आपसे अलग किया और अपने पास बुलाया। भगवान् अपनी वस्तुको अपना लें, उसे बुलाकर सर्वदाके लिये अपने पास रख लें—यह हमारे लिये प्रसन्नताकी बात होनी चाहिये। परंतु हमारी ममता, हमारे जन्म-जन्मान्तरोंका अभ्यस्त मोह हमें बार-बार कष्ट देता है और वही हमें इस बातके लिये प्रेरित करता है कि हम भगवान्‌की इच्छा पूरी न होने दें—अपनी इच्छा पूरी करें।

केवल आपके पुत्रको सुख हो और आपको दु:ख—यह भी इस घटनाका उद्देश्य नहीं समझना चाहिये क्योंकि आपकी पूरी ममता भगवान्‌पर ही होनी चाहिये। जैसे भगवान् जीवके अनन्य प्रेमी हैं, वैसे ही वे उसके अनन्य प्रियतम भी हैं। वे चाहते हैं कि जीव मुझसे ही हँसे—मुझसे ही खेले और मुझसे ही प्रेम करे। जब जीव उनके दिये हुए खिलौनोंसे इतना उलझ जाता है कि स्वयं उनको भी भूल जाता है तब वे उन खिलौनोंको छीनकर उसकी पूरी ममता अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं। इस घटनाको पूर्ण रूपसे आपके और आपके पुत्र—दोनोंके लिये ही हितकर समझिये, इसपर विचार कीजिये और अपने एकमात्र सुहृद्, पूर्ण हितैषी भगवान्‌में प्रेम और श्रद्धासे सराबोर होकर उनके भजनमें लगे रहिये। शेष प्रभुकृपा।

(३)

भजन, ध्यान, सत्संगके लिये प्रेरणा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। अपना समय भगवान्‌के भजन, ध्यान तथा सत्संगमें बिताना चाहिये। भजन-ध्यानका साधन तेज हो, इसके लिये सत्संग करना चाहिये। साधनके बिना जो समय जाता है, उसे व्यर्थ समझा गया है। पहले जो समय व्यर्थ चला गया, वह तो चला ही गया। अब एक पल भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। एक भगवान्‌के सिवा आपका कोई भी नहीं है। शरीर भी कोई काम नहीं आयेगा, फिर दूसरे पदार्थोंकी तो बात ही क्या है।

रात्रिमें जब भी आँख खुले, तभी तुरन्त भगवान्‌को याद कर लेना चाहिये तथा एक क्षणके लिये भी भगवान्‌का विस्मरण हो जाय तो उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये, जिससे बादमें पश्चात्ताप न करना पड़े।

सर्वत्र भगवान्‌को विद्यमान समझकर, सब कुछ भगवान्‌की लीला समझकर एवं अपने ऊपर भगवान्‌की दया और प्रेम समझकर हर समय आनन्दमें मग्न रहना चाहिये। जो कुछ भी हो, उसको भगवान्‌का विधान समझकर प्रसन्न रहना चाहिये। जिस किसी प्रकार चित्तमें परम आनन्द हो, वही चेष्टा करे। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

शिवकृपा

लगभग ७५ साल पहलेकी बात है। हमारे गाँवके किसी व्यक्तिको कार्यविशेषसे अजमेर जाना होता तो प्राय: लोग पैदल ही जाते। समर्थ लोग ऊँटसे जाते थे। हमारे गाँव मझेवलासे अजमेरकी दूरी पाँच कोस है, परंतु मार्गमें कोई गाँव या आबादी नहीं थी। लोग समूहमें ही आते-जाते थे। रास्तेमें करीब चार कोसतक पगडण्डियाँ थीं। फिर पुष्करसे अजमेर जानेवाली सड़क मिलती थी। हमारे गाँवसे कड़ैल आदि गाँवोंको जानेका यही एक मार्ग था। बूढ़ा पुष्करसे आने-जानेवाले लोगोंको देवनगर-बूढ़ा पुष्करके बीच एक स्थान, जिसे ऊँडामाला कहते हैं, वहाँ ऊँटोंपर बैठकर डाकू आते और राहगीरोंको लूट लेते थे।

एक बारकी बात है, उस समय मेरी आयु १२ वर्ष थी। मुझे किसी कार्यसे बाहर जाना था, सो मैं प्रात: ही निकल गया और करीब ४ बजे अजमेरसे वापस लौटा। चलते-चलते जब मैं बूढ़ा पुष्करके पास पहुँचा तो सूर्यास्त हो गया। मैं ऊँडामालाके पाससे गुजर रहा था कि वहींपर मुझे दो लुटेरोंने पकड़ लिया और कहा कि तुम्हारे पास जो कुछ भी हो, दे दो। मैं डरकर रोने लगा, इतनेमें उनमेंसे एक लुटेरेने मेरी जेबमें हाथ डालकर ४ रुपये निकाल लिये और मुझे छोड़ दिया। अब तो मेरा घर पहुँच पाना मुश्किल हो गया, क्योंकि रातका समय और जेबमें एक पैसे भी नहीं। फिर मैं पासके ही गाँवमें एक गुर्जरके घर पहुँचा और उससे अपनी आपबीती बताकर उनके यहाँ ही रात गुजारनेके लिये ठहर गया। उन्होंने मेरी घटना सुनकर मुझे सान्त्वना दी। दूसरे दिन मैं घर पहुँचा। घरवाले रातभर बहुत चिन्तित थे। मुझे देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा बेटा! तुम्हें रात हो जानेपर इस रास्तेसे नहीं आना चाहिये था।

करीब तीन-चार माह पश्चात् मुझे पुन: अजमेर जाना पड़ा और इस बार भी लौटते समय सूर्यास्त हो गया। अब मैंने आगे जाना उचित नहीं समझा। फिर मैं वहीं पासके एक गाँवमें रात्रि गुजारनेके लिये चला गया। उस गाँवके पासमें वैद्यनाथजीका मन्दिर है। मैंने सोचा कि वहाँ जलकी व्यवस्था तो अवश्य होगी। यह सोचकर मैंने लोगोंसे मन्दिरका रास्ता पूछा। लोगोंने बताया कि यह पहाड़ी पार करके आप वहाँ पहुँच सकोगे, परंतु वहाँ जानेमें करीब एक घंटेका समय लग जायगा। मैंने आगे चलनेका निश्चय किया। लेकिन अँधेरा होनेके कारण मुझे डर भी लग रहा था। मैं मन-ही-मन भगवन्नाम-जप करते पहाड़ीके शीर्ष स्थानपर पहुँचा। आगे पगडंडी नहीं दिख रही थी। अत: मैं वहीं शिखरपर बैठ गया। मैं बहुत घबरा गया था, कुछ सूझ न रहा था। भगवान्‌से अन्तर्मनसे प्रार्थना करता जा रहा था कि भगवन्! अब आपके सिवाय कोई अवलम्बन नहीं सूझ रहा है। हे प्रभो, मेरी रक्षा कीजिये। तभी एक आदमी मेरे पास आया और उसने कहा—'भैया! तुम कहाँ जा रहे हो और तुम कहाँके रहनेवाले हो?'

मैंने उसके प्रश्नोंका उत्तर दिया। फिर उसने कहा—तुमने बड़ा अच्छा किया, जो तुम यहीं बैठकर विश्राम करने लगे; तुम्हें यहाँसे आगेका रास्ता इसलिये नहीं दिखायी दे रहा है, क्योंकि यहाँ एक विशाल गड्ढा है। यदि तुम एक कदम भी आगे बढ़ते तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित थी।' यह सुनकर मैं तो एकदम-से काँप गया।

उन्होंने कहा—घबराओ नहीं, आओ, मैं तुम्हें मन्दिरतक छोड़ देता हूँ। ऐसा करो, मेरे हाथमें जो यह लकड़ी है, इसे तुम पकड़ लो और मेरे साथ चलो।

फिर मैंने भी उनसे पूछा—'आप कौन हैं? और इस समय यहाँ क्या कर रहे हैं?'

उन्होंने कहा कि मैं यहीं पासके गाँवका रहनेवाला हूँ। दिनमें यहींपर अपनी बकरियाँ चराता हूँ। असलमें आज दो बकरियाँ यहीं खो गयीं। उन्हें ही ढूँढ़ने आया हूँ।

ऐसे ही बातें करते मैं मन्दिरके करीब पहुँच गया। उन्होंने कहा—देखो, सामने मन्दिर है, वहाँपर एक ब्रह्मचारीजी रहते हैं, वे तुम्हारी सारी व्यवस्था कर देंगे। इतना कहकर वे चले गये। मैं मन्दिर पहुँचा और ब्रह्मचारीजीसे सारी बातें कहीं तो ब्रह्मचारीजी यह सब सुनकर अभिभूत हो गये।

उन्होंने कहा तुम तो बड़े भाग्यशाली हो, वह राह बतानेवाला कोई और नहीं स्वयं भगवान् शिव थे। उनके ऐसा कहनेपर मैं फूट-फूटकर रोने लगा और मन-ही-मन भगवान्‌की कृपापर अभिभूत हो गया।—**लादूसिंह राजपुरोहित**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

जडिया मायका ओटला

'भगवान् भक्तिके भूखे होते हैं, उन्हें सच्चा भाव प्रिय होता है। सच्ची श्रद्धा-भक्तिसे ही वे भक्तके वशमें हो जाते हैं।' यहाँ इसी भाव-बोधकी एक सत्य घटना प्रस्तुत है—

मेरे गाँवमें बहनेवाली नदीके किनारे एक मिट्टीका ओटला बना हुआ था। गाँवके लोग इसे जडिया मायका ओटला कहते थे। वास्तवमें यह टीला जडिया मायकी बहूकी यादमें बनाया गया था, पर चूँकि सास जडियाने बनवाया था, सो इसका नाम जडिया मायका ओटला पड़ गया। सन् १९६१ की बाढ़में यह ओटला बह गया और वहाँ एक गड्ढा बन गया। जब यह ओटला था तो गाँवके लोग इसे गोबरसे लीप-पोतकर, धूप-दीप जलाकर इसपर प्रसाद चढ़ाते थे। यह न तो हिन्दुओंका और न ही मुसलमानोंका ओटला था, परंतु यहाँ प्रायः गुग्गुल और लोहबानकी सुगन्ध आती रहती थी अर्थात् यह स्थान दोनों धर्मोंके अनुयायियोंके लिये श्रद्धाका केन्द्र था। पूजाका न कोई विधान था और न ही निश्चित समय या तिथि ही। कभी हफ्तों यहाँ कोई न आता और कभी एक ही दिनमें दो-तीन बार पूजा हो जाती थी। मैंने बचपनमें इस ओटलेके विषयमें एक कहानी सुनी थी, वह इस प्रकार है—

यह उस समयकी बात है, जब अपने देशमें रेल-सेवा नहीं थी। गाँवके लोग दस-बीसके समूहमें पैदल तीर्थयात्रापर जाते थे ताकि अनजान प्रदेशमें एक-दूसरेकी सहायताकर सकुशल घर वापस लौट सकें। उन्हें तीर्थयात्रामें महीनोंका समय लग जाता था, सो इन तीर्थपर जानेवाले लोगोंको इस प्रकार विदा करते थे कि पता नहीं फिर मुलाकात होगी या नहीं।

गाँवमें एक बूढ़ी माँ अपने इकलौते किसान बेटे एवं उसकी बहू और शिशु पोतेके साथ रहती थी। यही बूढ़ी माँ गाँवमें जडिया मायके नामसे जानी जाती थी। जडिया दिनभर पूजा-पाठ, भजनमें लगी रहती, साथ ही गाँवमें सभीका ख्याल रखती। उसका बेटा खेती करता था।

एक दिन जडिया गाँवमें घूमने गयी तो पता चला कि गाँवके कुछ लोग तीर्थयात्रापर जा रहे हैं। उसकी भी तीर्थयात्रापर जानेकी इच्छा हुई। उसने अपनी बहू एवं बेटेको तीर्थयात्रापर जानेकी अपनी इच्छा बतायी। उन्होंने जडियाकी इच्छाको खुशी-खुशी स्वीकारकर यात्राहेतु आवश्यक तैयारियाँ कर दीं। सब कुछ तो ठीक था, परंतु जडिया यह सोचकर परेशान हो गयी कि मेरे जानेके बाद मेरे भगवान् बालमुकुन्दकी पूजा रोज कौन करेगा; क्योंकि बहू दिनभर सारा घरका काम-काज करती थी, इस कारण उसे पूजा-पाठ करनेका तनिक भी नियम नहीं पता था। जडियाने अपने मनकी बात अपने बहू-बेटेको बतायी तो बहूने कहा कि वह समय निकालकर प्रतिदिन पूजा कर दिया करेगी। उसने जडियाको बेफिक्र होकर यात्रापर जानेके लिये कहा। पर जडियाका मन नहीं माना। जडियाने बहूको बालमुकुन्दकी पूजा एवं भोग लगानेकी विधि समझाया, फिर वह यात्रापर चली गयी।

जडियाके यात्रापर चले जानेपर जब बहूने बालमुकुन्दको पूजाके पश्चात् नैवेद्यका भोग लगाया तो बालमुकुन्दने वह नैवेद्य नहीं खाया। उसने बहुत मनुहार किया फिर भी कुछ न हुआ तो उसे रोष आ गया और वह बोली—देख रे बालमुकुन्दा! मुझे बहुत काम है, अभी भोजन लेकर खेतमें जाना है। मेरे पास डोकरी-जैसा एक तेरेको मनानेका काम ही नहीं है। चुपचाप आ और भोग खा ले, नहीं तो इस डण्डेसे पिटाई करूँगी। तू नहीं खायेगा तो यात्रासे आकर डुकरिया मेरेको खा जायँगी। लाऊँ डण्डा? अब तो बालमुकुन्दने चुपचाप आकर भोग खानेमें ही अपनी खैरियत समझी और उन्होंने बालकके रूपमें आकर भोजन करना शुरू कर दिया। बहू बोली—ऐसे पहले ही आ जाता तो मुझे डण्डा क्यों उठाना पड़ता? अब खा-पीकर जाओ बाहर बच्चे खेल रहे हैं, उनमें खेलो। मैं रोटी लेकर घर बन्दकर खेतमें जा रही हूँ। बालमुकुन्द बाहर जाकर बच्चोंमें खेलने लगे और वह खेत चली गयी। अब तो यह रोजका नियम हो गया। हाँ, अब बालमुकुन्द एक आवाजमें आ जाते, डण्डेकी जरूरत नहीं पड़ती।

करीब दो माह बाद बूढ़ी माँ जडिया यात्रासे वापस

आयी। यात्राके पूरे समय उसके मनमें बालमुकुन्दकी पूजा, नैवेद्यकी चिन्ता लगी रही, सो उसने घर वापस आते ही पूजाघरमें जाकर देखा। बालमुकुन्द वहाँ नहीं थे। बूढ़ी माँ जडियाका मन धक्‌से रह गया और वह विलाप करने लगी—'अरे! मूर्ख बहूने पूजा करनेके बदले बालमुकुन्दको कहीं बाहर फेंक दिया। हे भगवान्! अब मैं कहाँ ढूँढ़ूँ—इतनेमें बहू खेतसे वापस आ गयी। उसे देखते ही जडियाने क्रोधमें बहूसे पूछा—'अरी! पूजाघरमें बालमुकुन्द नहीं हैं। तूने उन्हें कहाँ फेंक दिया?' बहूने कहा—'अरे माँ! मैं तो रोज बालमुकुन्दको खिला-पिलाकर बाहर खेलनेको भेज देती हूँ और फिर घर बन्दकर खेत चली जाती हूँ।'

इसपर जडियाने सोचा ऐसा कैसे हो सकता है? भला कोई मूर्ति कैसे खा-पीकर खेलने जा सकती है। उसने मन-ही-मन सोचा कि बहू मुझे मूर्ख बना रही है। इतनेमें बहूने बाहर निकलकर जोरसे पुकारा—'ओ बालमुकुन्दा! तेरी बुढ़िया आ गयी, तुझे बुला रही है' और इतनेमें जडिया क्या देखती है कि बालमुकुन्दकी धातुकी चमचमाती मूर्ति यथास्थान पूजाघरमें आकर स्थापित हो गयी।

यह देखकर जडियाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसके मुखसे कण्ठ न फूट रहे थे। वह बोली—'मैं मूरख तीर्थमें जिसे ढूँढ़ रही थी, वह तो मेरे घरमें अनपढ़ बहूकी गोदमें खेलता है। मेरी बहू तो नन्दरानी जशोदा है।' अब तो वह अपनी बहूको साक्षात् नन्दरानी ही मानकर आदर करने लगी।

इस घटनाके करीब दस वर्ष बाद बहूकी मृत्यु हो गयी। गाँवकी प्रथाके अनुसार उसका अन्तिम संस्कार किया गया। उसी स्थानपर जडियाने मिट्टीका ओटला बनाया और गोबरसे लीप-पोतकर जबतक जीवित रही, उस ओटलेपर दीपक जलाया करती थी।—**श्रीहरी गुहा**

(२)

जैसे संस्कार, वैसी दृष्टि

रामकृष्ण परमहंस प्राय: कहा करते थे—'अहंकार और विशेषकर धन तथा विद्वत्ताका अहंकार धनी और पण्डितके विकासके मार्गमें बाधा पैदा कर देते हैं। अत: अहंकारसे सदैव बचना चाहिये।

एक दिन श्रीकेशवचन्द्र सेन श्रीरामकृष्ण परमहंससे मिलने दक्षिणेश्वर (कलकत्ता) पहुँचे। बातचीतके दौरान उन्होंने पूछा—'परमहंसजी, बहुत-से पण्डितगण अनेक धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर लेते हैं। इसके बावजूद उनके हृदयमें न करुणा-भावना पैदा हो पाती है, न वे सामाजिक व्यवहारपटु हो पाते हैं। अपने पाण्डित्यके अहंकारमें अनर्गल वाद-विवादमें तत्पर रहते हैं। धर्मशास्त्रोंके अध्ययनसे तो उनमें विनम्रता तथा व्यावहारिकता आ जानी चाहिये।'

स्वामीजीने उत्तर दिया—'चील-गिद्ध आसमानमें बहुत ऊँची उड़ान भरते हैं, किंतु उनकी निगाह प्राकृतिक सौन्दर्यको न निहारकर जमीनपर सड़ रही पशुओंकी लाशोंकी खोजमें लगी रहती है। इसी प्रकार जिसके अन्दर लोभ, लालच तथा संकीर्णता घर कर चुके हैं, वह धर्मशास्त्रोंके प्रेरक तथा कल्याणकारक वचनोंका पालन करनेकी जगह कामिनी, कंचन तथा स्वार्थके प्रति ही आसक्ति बनाये रखता है। जो व्यक्ति धर्मके सच्चे स्वरूपको समझ लेता है—शास्त्रोंसे वही सच्चा लाभ प्राप्त कर सकता है।'

श्रीकेशवचन्द्र सेनकी जिज्ञासाका समाधान हो गया।—**शिवकुमार गोयल**

(३)

आदर्श भ्रातृ-प्रेम

सूरजकरण और चाँदचरण दोनों सगे भाई थे। दोनों एक ही गाँवमें रहते थे। माता-पिताका साया छोटी आयुमें ही सिरसे उठ चुका था। अत: दोनों गरीबीमें जैसे-तैसे गुजर-बसर कर रहे थे। दोनोंमें तीन सालका अन्तर था। सूरज बड़ा और चाँद छोटा था।

एक दिन दिल्लीमें रहनेवाले एक नि:सन्तान रिश्तेदार बम्बईसे लौटते हुए उनके गाँवमें आये। उन्हें सूरजके बोल-चालका ढंग एवं रहन-सहनका तरीका बड़ा अच्छा लगा। उन्होंने सोचा कि क्यों न इसे पढ़ाया-लिखाया जाय। इतना संस्कारी बच्चा यदि पढ़-लिख ले तो सोने-पे-सुहागा हो जाय। वे उसे अपने साथ दिल्ली ले गये। वहाँ उन्होंने उसे एक अच्छे स्कूलमें भर्ती करा दिया। सूरज उनकी आशाओंपर खरा उतरता गया। बादमें उन्होंने उसे इंजीनियरिंगकी पढ़ाईके

लिये बनारसके बीएचयूमें भर्ती भी करा दिया। चार सालकी पढ़ाईके पश्चात् सूरज एक फर्ममें सेवा करने लगा। वह कम्पनीकी तरफसे दो बार इंग्लैण्ड भी हो आया था। वह दिल्लीके चाँदनी चौक इलाकेमें एक विशाल शानदार मकानमें रहता था। उसके दो लड़के हुए। उसने एकको डॉक्टर और दूसरेको इंजीनियर बनाया। बादमें दोनों अमेरिकामें अपना-अपना कारोबार करने लगे। दोनोंने खूब पैसा कमाया और अब वहीं स्थायी रूपसे रहने लगे।

सूरज सेवानिवृत्तिके बाद पत्नीके साथ चाँदनी चौकवाले मकानमें रहने लगा। घरमें दो नौकर काम करते थे। सूरजकी अवस्था सत्तरके करीब पहुँच चुकी थी। एक दिन पत्नी हार्ट अटैकसे भगवान्‌को प्यारी हो गयी। बच्चोंने पिताको अपने साथ अमेरिका ले जानेकी इच्छा जतायी किंतु उन्होंने दिल्ली छोड़नेसे मना कर दिया। एक दिन चाँदकरण बड़े भाईके पास पहुँचे और उन्हें मनाकर अपने गाँव ले आये।

चाँदकरण साधुप्रकृतिके व्यक्ति थे। उनका गाँवमें एक बड़ा मकान था। उनके पाँच बेटे, पाँच बहुएँ और ग्यारह पोते-पोतियाँ थे। दोमंजिले मकानमें सात कमरे नीचे और इतने ही ऊपरकी मंजिलमें थे। घरके आँगनमें ठण्डे मीठे पानीकी एक कुइयाँ थी। घरके बाहरकी तरफ एक विशाल चबूतरा था। उनका एक लड़का गाँवमें किरानेकी दूकानपर बैठता था दूसरा चक्की चलाता था। तीसरा गाय-भैंसोंको सँभालता और चौथा खेती-बाड़ीकी देखभाल करता था। पाँचवाँ पड़ोसके कस्बेमें कपड़ेकी दूकान करता था।

शामको पाँचों बेटे पिताके साथ भोजन करते थे, यदि कभी किसीके आनेमें विलम्ब हो जाता था तो पिता उसकी राह देखते थे। उसके आनेपर ही भोजन शुरू किया जाता। महिलाएँ और बच्चे अलग-अलग पंक्तियोंमें बैठते थे। परोसनेका काम महिलाएँ बारी-बारीसे करती थीं। भोजनोपरान्त चबूतरोंपर पानीसे सफाई कर दी जाती और वहाँ एक आसन बिछा दिया जाता। सम्पूर्ण वातावरण एकदम शान्त रहता था। चाँदकरण एक तख्तेपर विराज जाते और धर्मपत्नी उनके पैताने बैठकर उनकी चरणसेवा करती थीं।

घरमें सब प्रकारकी सुविधा थी। खूब घी, दूध, छाछ इकट्ठा होता था। सूरजकरणके लिये दो कमरोंमें व्यवस्था कर दी गयी। दो नौकर चौबीसों घण्टे उनकी सेवामें तैनात कर दिये गये। गाँवकी ताजी हवा और अच्छी व्यवस्थासे सूरजकरण काफी स्वस्थ हो गये। वह दो बार एक नौकरके साथ दिल्ली भी हो आये। उन्होंने अपना एक बड़ा बक्सा और चाभी चाँदकरणके पास रख दिया और उसकी चाभी देकर कहा कि यह केवल तुम्हारे लिये है। इसपर मेरे लड़कोंका कोई हक नहीं है। एक दिन प्रातःकालीन भ्रमणके दौरान वे एक बड़े पत्थरसे टकरा गये और दो दिन बाद भगवान्‌को प्यारे हो गये।

तीन दिन बाद दोनों बच्चे अमेरिकासे आये। चाँदकरणने उन्हें ट्रंक और चाभी सौंप दी। ट्रंकमें दो लाख रुपये और दिल्लीके चाँदनी चौकवाले मकानकी वसीयत थी। बच्चोंने जब उन्हें कुछ देना चाहा तो उन्होंने कुछ भी लेनेसे साफ इनकार कर दिया।

भरतकी नीयतपर शक करते हुए लक्ष्मणने जब उनसे युद्ध करनेकी बात कही तब रामने कहा था—अयोध्याकी तो बात ही क्या, यदि भरतको विधि-हरिहरका पद भी मिल जाय तो भी उनमें तनिक भी अभिमान नहीं आयेगा।

रैदासको जब देवराज इन्द्रने पारस पत्थर देनेकी पेशकश की तो उन्होंने कहा था यदि मेरी राँपी (टूटी जूतियोंमें टाँका लगानेका औजार) सोनेकी हो गयी तो मैं अपने बच्चोंका भरण-पोषण कैसे कर पाऊँगा; क्योंकि सोनेकी राँपी से तो जूतियोंकी मरम्मत नहीं की जा सकेगी।

गोधन, गजधन बाजि धन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान॥

तुकारामजीने अपने सारे बहीखाते इन्द्रायणीके दहमें डाल दिये थे। समस्त पैतृक सम्पत्तिको गरीबोंपर लुटा देनेवाले नरसी मेहताका भात भरनेके लिये स्वयं नारायणको आना पड़ा।

आज इस बातको तीस वर्षसे ज्यादा हो गये हैं तथापि चाँदकरणजी आज भी मेरी स्मृतिमें अंकित हैं। उन स्थितप्रज्ञ महामानवको मेरा शतशः प्रणाम।

—गोपालकृष्ण जिंदल

मनन करने योग्य

लक्ष्यके प्रति एकाग्रता

द्रोणाचार्य पाण्डव एवं कौरव राजकुमारोंको अस्त्र-शिक्षा दे रहे थे। बीच-बीचमें आचार्य अपने शिष्योंके हस्तलाघव, लक्ष्यवेध,शस्त्र-चालनकी परीक्षा भी लिया करते थे। एक बार उन्होंने एक लकड़ीका पक्षी बनवाकर एक सघन वृक्षकी ऊँची डालपर रखवा दिया। राजकुमारोंको कहा गया कि उस पक्षीके बायें नेत्रमें उन्हें बाण मारना है। सबसे बड़े राजकुमार युधिष्ठिरने धनुष उठाकर उसपर बाण चढ़ाया। इसी समय आचार्यने उनसे पूछा—'तुम क्या देख रहे हो?'

युधिष्ठिर सहजभावसे बोले—'मैं वृक्षको, आपको तथा अपने सभी भाइयोंको देख रहा हूँ।'

आचार्यने आज्ञा दी—'तुम धनुष रख दो!'

युधिष्ठिरने चुपचाप धनुष रख दिया। अब दुर्योधन उठे। बाण चढ़ाते ही उनसे भी वही प्रश्न आचार्यने किया। दुर्योधनने कहा—'सभी कुछ तो देख रहा हूँ। इसमें पूछनेकी क्या बात है?'

उन्हें भी धनुष रख देनेका आदेश हुआ। इसी प्रकार बारी-बारीसे सभी पाण्डव एवं कौरव राजकुमार उठे। सबने धनुष चढ़ाया। सबसे वही प्रश्न आचार्य ने किया। सबने लगभग एक ही उत्तर दिया। सबको बिना बाण चलाये धनुष रख देनेकी आज्ञा आचार्यने दे दी। सबके अन्तमें आचार्यकी आज्ञासे अर्जुन उठे और उन्होंने धनुषपर बाण चढ़ाया। उनसे भी आचार्यने पूछा—'तुम क्या देख रहे हो?'

अर्जुनने उत्तर दिया—'मैं केवल यह वृक्ष देख रहा हूँ।'

आचार्यने फिर पूछा—'मुझे और अपने भाइयोंको तुम नहीं देखते हो?'

अर्जुन—'इस समय तो मैं आपमेंसे किसीको नहीं देख रहा हूँ।'

आचार्य—'इस वृक्षको तो तुम पूरा देखते हो?'

अर्जुन—'पूरा वृक्ष मुझे अब नहीं दिखता। मैं तो केवल वह डाल देखता हूँ, जिसपर पक्षी है।'

आचार्य—'कितनी बड़ी है वह शाखा?'

अर्जुन—'मुझे यह पता नहीं, मैं तो पक्षीको ही देख रहा हूँ।'
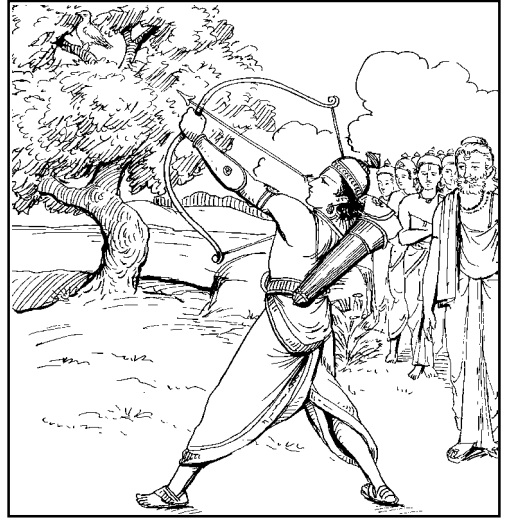
आचार्य—'तुम्हें दीख रहा है कि पक्षीका रंग क्या है?'

अर्जुन—'पक्षीका रंग तो मुझे इस समय दीखता नहीं। मुझे केवल उसका वाम नेत्र दीखता है और वह नेत्र काले रंगका है।'

आचार्य—'ठीक है। तुम्हीं लक्ष्यवेध कर सकते हो। बाण छोड़ो।' अर्जुनके बाण छोड़नेपर पक्षी उस शाखासे नीचे गिर पड़ा। अर्जुनके द्वारा छोड़ा गया बाण उसके बायें नेत्रमें गहरा चुभा हुआ था।

आचार्यने अपने शिष्योंको समझाया—'जबतक लक्ष्यपर दृष्टि इतनी स्थिर न हो। लक्ष्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ दीखे ही नहीं, तबतक लक्ष्यवेध ठीक नहीं होता। इसी प्रकार जीवनमें जबतक लक्ष्य-प्राप्तिमें पूरी एकाग्रता न हो, सफलता संदिग्ध रहती है।'

[महाभारत, आदिपर्व]

कल्याण-ग्राहकोंसे नम्र-निवेदन

उन सभी सम्माननीय ग्राहकोंसे निवेदन है कि जिन्होंने कल्याण २०१७ का विशेषाङ्क—'**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**' **[हिन्दी भाषानुवाद—पूर्वार्ध, श्लोकाङ्कसहित]** (कूपनवाला) प्राप्त कर लिया है और उन्हें अभीतक कल्याणके मासिक अङ्क प्राप्त न हो रहे हों तो विशेषाङ्कमें लगे हुए कूपनपर अपना पूरा नाम/पता लिखकर तत्काल कल्याण-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी नजदीकी दूकानपर जमा कर देवें, जिससे 'कल्याण'के मासिक अङ्क फरवरी २०१७ से दिसम्बर २०१७ तक भेजे जा सकें।

अब कल्याण-विशेषाङ्क—'**श्रीशिवमहापुराणाङ्क**' **[हिन्दी भाषानुवाद—पूर्वार्ध, श्लोकाङ्कसहित]** की कुछ ही प्रतियाँ सभी मासिक अङ्कोंके साथ शेष रह गयी हैं, अतः अपने शुभचिन्तकों/शुभेच्छुओंको भिजवानेमें शीघ्रता करनी चाहिये। व्यवस्थापक—'**कल्याण-कार्यालय**', **गीताप्रेस, गोरखपुर—273005**

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कर्मकाण्डकी प्रमुख पुस्तकें

[६ सितम्बरसे पितृपक्ष (महालया) आरम्भ हो रहा है]

नित्यकर्म-पूजा-प्रकाश, सजिल्द (कोड 592)—इस पुस्तकमें प्रातःकालीन भगवत्स्मरणसे लेकर स्नान, ध्यान, संध्या, जप, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देव-पूजन, देव-स्तुति, विशिष्ट पूजन-पद्धति, पञ्चदेव-पूजन, पार्थिव-पूजन, शालग्राम-महालक्ष्मी-पूजनकी विधि है। मूल्य ₹६० (गुजराती, तेलुगु, नेपाली भी)

अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश (कोड 1593) ग्रन्थाकार—इस ग्रन्थमें मूल ग्रन्थों तथा निबन्ध-ग्रन्थोंको आधार बनाकर श्राद्ध-सम्बन्धी सभी कृत्योंका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। मूल्य ₹१३०

जीवच्छ्राद्धपद्धति (कोड 1895)—प्रस्तुत पुस्तकमें जीवित श्राद्धकी शास्त्रीय व्यवस्था दी गयी है, जिसके माध्यमसे व्यक्ति अपने जीवित रहते ही मरणोत्तर क्रियाका सही सम्पादन करके कर्म-बन्धनसे मुक्त हो सके। मूल्य ₹६०

गया-श्राद्ध-पद्धति (कोड 1809)—शास्त्रोंमें पितरोंके निमित्त गया-यात्रा और गया-श्राद्धकी विशेष महिमा बतायी गयी है। आश्विन मासमें गया-यात्राकी परम्परा है। प्रस्तुत पुस्तकमें गया-माहात्म्य, यात्राकी प्रक्रिया, श्राद्धका महत्त्व तथा श्राद्धकी प्रक्रियाको साङ्गोपाङ्ग ढंगसे प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹३५

गरुडपुराण-सारोद्धार (कोड 1416)—श्राद्ध और प्रेतकार्यके अवसरोंपर विशेषरूपसे इसके श्रवणका विधान है। यह कर्मकाण्डी ब्राह्मणों एवं सर्व सामान्यके लिये भी अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य ₹३५

त्रिपिण्डी श्राद्ध (कोड 1928)—अपने कुल या अपनेसे सम्बद्ध अन्य कुलमें उत्पन्न किसी जीवके प्रेतयोनि प्राप्त होनेपर उसके द्वारा संतानप्राप्तिमें बाधा या अन्यान्य अनिष्टोंकी निवृत्तिके लिये किया जानेवाला श्राद्ध त्रिपिण्डी श्राद्ध है। इस पुस्तकमें त्रिपिण्डी श्राद्धका सविधि वर्णन किया गया है। मूल्य ₹१५

सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधि (कोड 210) पुस्तकाकार—नित्य सन्ध्या-उपासना एवं तर्पण बलिवैश्वदेवविधिका मन्त्रानुवादके साथ सुन्दर प्रकाशन। मूल्य ₹६

पुनः छपकर तैयार

श्रीभगवन्नाम-महिमा-प्रार्थनाङ्क (कोड 1135)—इसमें विभिन्न सन्त-महात्माओं, विद्वान् विचारकोंके भगवन्नाम-महिमा एवं प्रार्थनाके चमत्कारोंके सन्दर्भमें शास्त्रीय लेखोंका सुन्दर संग्रह है। मूल्य ₹१६०

धर्मशास्त्राङ्क [संवर्धित संस्करण] (कोड 1132)—प्रस्तुत अङ्कमें उपलब्ध सभी स्मृतियों एवं धर्मसूत्रोंका परिचय और सार-संक्षेपमें उनके मुख्य विषयोंका प्रतिपादन तथा उन विषयोंसे सम्बन्धित कुछ प्रेरणाप्रद आख्यान प्रस्तुत किया गया है। मूल्य ₹१५०

प्र० ति० २०-७-२०१७
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

Bhaktarāja Hanumān (Code 2082)—प्रस्तुत पुस्तकमें भक्तश्रेष्ठ हनुमान्‌जीकी विभिन्न लीलाओंका वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, ब्रह्माण्डपुराण तथा पद्मपुराणके आधारपर बड़ा ही सुन्दर और सरस चित्रण किया गया है। मूल्य ₹१० (हिन्दी, गुजराती, मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड़ भी)

Truth-Loving Hariścandra (Code 2083)—सत्यनिष्ठ राजा हरिश्चन्द्रका जीवन-चरित्र सत्य और धर्मपर दृढ़ निष्ठाका अनुपम उदाहरण है। प्रस्तुत पुस्तकमें उनके जन्म-कर्म, धर्मनिष्ठा तथा त्यागपूर्ण व्यवहारका इतिहास-पुराणोंके आधारपर बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। मूल्य ₹८ (हिन्दी, ओड़िआ भी)

An Ideal Woman—Sushila (Code 2085)—परम विदुषी, सद्‌गुणी, ईश्वर-भक्त, पतिव्रता एवं आदर्श नारी सुशीलाके चरित्रका प्रस्तुत पुस्तकमें ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा मनोहर चित्रण किया गया है। मूल्य ₹६ (हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती, असमिया, ओड़िआ, तेलुगु, तमिल भी)

Savitri and Satyavan (Code 2084)—पातिव्रत्य धर्ममें अविचल निष्ठा रखनेवाली तथा पतिको परमेश्वर माननेवाली परम सती सावित्रीका पुराणोंके आधारपर इस पुस्तकमें सुन्दर चरित्र-चित्रण किया गया है। मूल्य ₹५ (हिन्दी, मराठी, गुजराती, ओड़िआ, कन्नड़, तेलुगु, तमिल भी)

शिक्षाप्रद चरितावली (कोड 2079)—चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें भरत मुनि, कपिल मुनि तथा रामकृष्णपरमहंस आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹२५

शिक्षाप्रद बाल-कहानियाँ (कोड 2080)—चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें बुद्ध, महावीर, कालिदास आदिके विषयमें बालकोपयोगी जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹२५

कल्याणकारी बाल-कहानियाँ (कोड 2081)—चार रंगोंमें आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें सातवाहनकी कहानी, कभी खाली न होनेवाले घड़ेकी कहानी तथा चूहा और सौदागर आदिकी कहानियाँ रोचक भाषामें दी गयी हैं। मूल्य ₹२५

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

1. 'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: केवल कल्याणके लिये कल्याण विभागको एवं पुस्तकोंके लिये पुस्तक-बिक्री-विभागको पत्र तथा मनीऑर्डर आदि अलग-अलग भेजना चाहिये। पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन (0551) 2331250, 2334721 नम्बरोंपर सम्पर्क करें।

2. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/ 09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9 बजेसे 12 बजेतक एवं 1.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं अथवा kalyan@gitapress.org पर e-mail भेज सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं० 9648916010 पर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

3. कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ २२० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।

4. कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५